पार्सी परिचय

कृपानारायण पाठक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

१९४३

[बारह आना

आर्य संस्कृति के प्रेमियों

को

सादर समर्पित

लेखक

दो शब्द

बीसवीं शताब्दी के वर्तमान काल में लोगों की अभिरुचि संसार की जातियों के अध्ययन में बढ़ रही है। वस्तुतः विश्व-बन्धुत्व के सार्वभौम सिद्धान्त का सफल निर्वाह विभिन्न जातियों के प्राचीन और अर्वाचीन स्वरूप के उचित अध्ययन पर बहुत कुछ निर्भर है। जातियों के विकृत और भ्रमात्मक इतिहास के कारण कितने ही ऐतिहासिक अनर्थ हो चुके हैं। अतः जातियों में परस्पर सहानुभूति और शुभ भावनाओं को उत्पन्न करने के लिए एक दूसरे की ऐतिहासिक धारा की जानकारी आवश्यक है।

प्रायः अज्ञानता के कारण भारत के अधिकांश हिन्दुओं में यह निर्मूल धारणा फैली हुई है कि पारसी जाति मुसलमानों से अधिक सन्निकट है। और दोनों की सांस्कृतिक रूपरेखा समान है। पारसी समुदाय प्राचीन आर्यों का एक अङ्ग है। संस्कृत के ग्रन्थों में जहाँ मिस्र और यूनान के वासियों को यवन अथवा म्लेच्छ शब्द से अभिहित किया गया है वहाँ पारसियों के सम्बन्ध में आदर के साथ 'पारसीकाः' शब्द का उल्लेख है। पारसियों के पवित्र ग्रन्थ 'अवस्ता' के सिद्धान्तों को देखने से यह स्पष्ट पता लगता है कि धार्मिक सिद्धान्तों और कृत्यों की शैलियों का आर्य सिद्धान्तों के साथ कितना सान्निध्य है।

आज से लगभग पाँच हज़ार वर्ष पूर्व, महाभारत काल में ईरान शुद्ध आर्यों का' देश था। ईरान का अधिपति तथा युधिष्ठिर का मामा शल्य महाभारत के युद्ध में भाग लेने के लिए स्वयं कुरुक्षेत्र के मैदान में उपस्थित हुआ था। उस समय विडालाक्ष, बभ्रुवाहन एवं भगदत्त जैसे अमेरिका यूरोप और एशिया के विभिन्न खण्डों के नृपति और उनके चक्रवर्ती साम्राज्य के प्रतीक आर्यध्वज के सामने नतमस्तक खड़े

रहते थे। आर्यावर्त की सीमा भी वर्तमान समय के समान हिन्दुकुश तक सीमित और संकुचित नहीं थी वरन् भारत माँ के अञ्चल की प्रतिकृति कैस्पियन सागर के तरङ्गों पर प्रतिबिम्बित होती थी। भारत के पश्चिमोत्तर समीपवर्ती देशों के प्राचीन इतिहास के अध्ययन से आधुनिक भारत के अतीत विशाल स्वरूप का परिचय मिलता है और तद्देशीय जन-समुदाय के प्रति भ्रातृत्व की भावना जाग्रत हो उठती है।

हिन्दी-साहित्य की सर्वतोमुखी उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ ऐतिहासिक ग्रन्थों की भी सुन्दर रचनायें हो रही हैं। इस दिशा में प्रस्तुत पुस्तक द्वारा एक विशेष अङ्ग की पूर्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं। विद्वान् लेखक ने थोड़ी सी ही परिधि के भीतर बड़ी उत्तमता से पारसियों के आदि देश, धार्मिक सिद्धान्त, सभ्यता और संस्कृति, भाषा एवं आचार व्यवहार के ऊपर सप्रमाण प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थ के आद्योपान्त पठन के पश्चात् पारसियों की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में बहुत सी प्रचलित भ्रामक धारणाओं का निराकरण हो जावेगा और यह समझने में विलम्ब न लगेगा कि वे भी आर्य जाति के एक अङ्ग हैं।

अन्त में लेखक को इस सुन्दर और उपयोगी पुस्तक के लिखने के लिए हृदय से बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी-भाषी संसार इस ज्ञान-वर्द्धक पुस्तक को प्रत्येक पुस्तकालय में स्थान देकर इसका समादर करेगा।

डी० ए० वी० हाईस्कूल
प्रयाग
१७ दिसम्बर, १९४३

सत्याचरण
शास्त्री, एम० ए०

आत्मनिवेदन

आज से दस वर्ष पहले की बात है जब मैं गुरुकुल विश्व-विद्यालय वृन्दावन में अध्यापक था। मुझे महाविद्यालय-विभाग के 'सिद्धान्त' (Comparative Study of Religions) के ब्रह्मचारियों से संसार के प्राचीन मतों पर विचार-विनिमय करने का अवसर प्रायः मिला करता था। इस विचार-विनिमय ने मुझे पार्सी मत और पार्सी संस्कृति के अध्ययन की ओर विशेष प्रेरित किया। मैंने पूरे दो वर्ष पार्सी मत का गुजराती और अँगरेज़ी साहित्य पढ़ने में व्यतीत किये। अनेक देशी और विदेशी लेखकों की मौलिक और अनूदित रचनाओं को विचार-पूर्वक पढ़ा। फिर कुछ लिखा भी। कतिपय पार्सी सज्जनों से सम्पर्क स्थापित कर अपने विचारों और लेखों को संशोधित और परिवर्द्धित किया।

सन् १९३४ में उनमें के कुछ लेख 'आर्यमित्र' में सिलसिलेवार प्रकाशित हुए। अनेक मित्रों ने मुझे उन लेखों को पुस्तकाकार छपवाने का प्रोत्साहन दिया, किन्तु कुछ निजी कारणों से पुस्तक के छपने का सुअवसर न आया।

आज इतने वर्षों की देर के लिए क्षमा-याचना करता हुआ हिन्दी-पाठकों के हाथों में इस छोटी-सी पुस्तक को समर्पित करते हुए मुझे प्रसन्नता होती है। यह इस विषय पर अपने ढङ्ग की नई पुस्तक है। यद्यपि इससे पूर्व स्वामी श्रद्धानन्दजी तथा पण्डित गङ्गाप्रसादजी ने पार्सी मत का संक्षिप्त परिचय अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी पाठकों को अवश्य कराया था, पर मुझे उनकी पुस्तकें पार्सी मत तथा पार्सी

संस्कृति के पूर्ण परिचय के लिए कुछ अपर्याप्त-सी जान पड़ीं इसी लिए मैंने इस ओर यह प्रयत्न किया है।

यह पुस्तक साधारण हिन्दुओं में फैली हुई उन भ्रान्तियों को दूर करेगी जिनके कारण कुछ लोग पार्सियों को इस्लाम या इस्लामियों के निकट तथा कुछ लोग उन्हें ईसाइयों का भाई-बन्धु समझे बैठे हैं। यह पुस्तक उनको पार्सी जाति और पार्सी संस्कृति का वास्तविक रूप बतलाने में सहायक होगी।

पार्सी साहित्य को पढ़कर मेरा तो दृढ़ विश्वास हो गया है कि यदि ब्रह्मा, लङ्का, तिब्बत या चीन के रहनेवाले बौद्ध हमारे धर्मबन्धु हैं और विशाल प्राचीन हिन्दू धर्म के अङ्ग हैं; जैनी, आर्यसमाजी और सिक्ख नवीन हिन्दू धर्म के विरुद्ध होते हुए भी आर्य धर्म और आर्य संस्कृति के उपासक, रक्षक और प्रचारक हैं तो भारत या ईरान का पार्सी जन भी जो नित्य प्रति अग्नि की प्रतिष्ठा करता है, गोमाता की पूजा करता है, ब्राह्मणों (दस्तूर) में अटूट श्रद्धा रखता है और आदर्श वर्ण-व्यवस्था को मानता है; प्राचीन वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति का दक़ियानूसी पुजारी होने के कारण, हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के अधिक निकट है। उसे नाम के सादृश्य से कोई मुसलमान भले ही समझ ले और फ़ैशन से ईसाई भले ही मान बैठे किन्तु उसका वास्तविक रूप उसके घर में देखने को मिलता है जहाँ वह पक्का और शुद्ध आर्य (हिन्दू) है।

इस पुस्तक के तैयार करने में अनेक गुजराती और अँगरेज़ी पुस्तकों से मैंने सहायता ली है। मैं उनके लेखकों का अत्यन्त आभारी हूँ। स्थानाभाव के कारण उनका पृथक्-पृथक् नाम देने में असमर्थ हूँ। स्थानीय पार्सी मन्दिर के दस्तूर श्री रुस्तम जी तथा प्रसिद्ध पार्सी डाक्टर हीर जी, गुरुकुलीय सहयोगी पं० रामेश्वर जी सिद्धान्तशिरोमणि तथा ब्रह्मचारी सुधीन्द्र जी (अब स्नातक) का भी मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे हर समय पुस्तक के लिखने में सहायता पहुँचाई है। श्री

सीताराम निगम बी० ए०, एल० टी० ने भी पुस्तक में सहायता दी है, अतः उनका भी मैं आभारी हूँ।

सबसे अधिक धन्यवाद के पात्र हैं रायबहादुर श्रीनारायण चतुर्वेदी जी, शिक्षा-प्रसार अफ़सर, युक्त प्रान्त जिनकी विशेष कृपा से ही यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है।

इलाहाबाद

कृपानारायण पाठक

——

विषय-सूची

———

१—प्राचीन ईरान

भौगोलिक विस्तार :— आज के ईरान को ही हमें प्राचीन ईरान नहीं समझ लेना चाहिए। पुरातन समय में लघु-एशिया (एशिया माइनर) से आसाम तक भारत की सीमा थी। सिन्ध नदी के पूर्व की ओर का देश पूर्वीय भारत और उसके पश्चिम का प्रदेश पश्चिमी भारत के नाम से विख्यात था। इस समय जिस भाग में वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान, बिलोचिस्तान, ईरान, मेसोपोटामिया, सीरिया आदि देश हैं और जो लाल-सागर तक फैला हुआ है वही प्रदेश पश्चिमी भारत कहलाता था। पूर्वी भारत का दूसरा नाम आर्यावर्त था और पश्चिमी भारत को आर्यायण कहते थे। इसी आर्यायण शब्द से बिगड़कर ईरान शब्द बना है।

"लालसागर से पूर्व और सिन्धु नदी से पश्चिम और समुद्र से उत्तर तथा अरल और कास्पियनसागर के दक्षिण का प्रदेश प्राचीन भारतीय अनार्योंद्वारा ओरियन्स कहलाता था। यह ओरियन्स शब्द ही आर्यन शब्द का विकृत रूप है। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पश्चिमी भारत ही प्राचीन समय का ईरान प्रदेश था।"

(पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित)
'सुधा', वैशाख तु० सं० ३०९

विष्णुपुराण के तृतीय अध्याय में भी भारत की पूर्व से पश्चिम की सीमा के विषय में लिखा है कि "पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिता': अर्थात् इसके पूर्व में किरात तथा पश्चिम भाग में यवन बसे हुए हैं। किरात आसाम की प्राचीन जाति थी। आज भी वहाँ की याखा, जिमदार, खाम्भु आदि भाषाएँ किराती भाषाएँ कहलाती हैं। यवन

यूनानियों का प्राचीन नाम है। यूनान (वर्तमान ग्रीस) लघु एशिया से पश्चिम की ओर का प्रदेश है।

राजस्थान (Rajasthan) ग्रन्थ के रचयिता टाड साहब लिखते हैं—India not confined to its modern restricted definition, but that of antiquity, when Hindustan or Indo-Scythia extended from the Ganges to the Caspian. (Page 420). अर्थात् प्राचीन भारत गङ्गा से कास्पियन तक फैला था जिसे सिदिया भी कहते थे। टाड साहब एक जगह लिखते हैं By Saca Dwipe Scythie is understood (Page 24) अर्थात् सिदिया का दूसरा नाम शाकद्वीप भी है। टाड साहब ने भी पश्चिम भारत की सीमा कास्पियन सागर तक बतलाकर पौराणिक नाम 'शाकद्वीप' की ओर संकेत किया है। पुराणों के अनुसार शाकद्वीप लवणसागर (Persian Salt Desert) और क्षीरसागर (Red Sea) के मध्य का देश है। इसकी लम्बाई जम्बूद्वीप से दुगुनी और चौड़ाई (उत्तर-दक्षिण) तिगुनी थी।

जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः।
विस्तारात्त्रिगुणश्चापि परिणाहः समन्ततः॥
तेनावृतः समुद्रोयं द्वितीयो लवणोदकः।
उभयत्रावगाढौ च लवणक्षीरसागरौ।

(मत्स्यपुराण, पृष्ठ ३६५)

मत्स्यपुराण में शाकद्वीप के पर्वत सुमेरु, जलधार, सोमक, रत्नाकर, नारद, सुमना और विभ्राज बताये गये हैं। सुमेरु (Alburz) पर्वत में सोना निकलता था। इसे हेमकूट भी कहते थे। यहाँ देवर्षि और गन्धर्व रहते थे। (देवर्षि गन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते) इसी पर्वत पर कश्यप ऋषि का आश्रम था जहाँ शान्तनु के पुत्र महाराज भरत का जन्म हुआ।

स्वायम्भुवान् मरीचेयः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरुः सोऽस्मिन् सपत्नीकस्तपस्यति॥

(कालिदासकृत शकुन्तला नाटक, अङ्क ७)

अर्थात् यह तपस्या-क्षेत्र किन्नरों का हेमकूट पर्वत है। यहीं सुरों व असुरों के गुरु कश्यप ऋषि सपत्नीक तपस्या करते हैं। इस प्रदेश के निवासी अब भी अपने को कश्यपवंशीय (Caspian race) मानते हैं।

सोमक पर्वत पर देवों ने समुद्र-मथन के समय अमृत पिया था (स वै सोमक इत्युक्तो देवैर्यत्रामृतं पुरा) मत्स्यपुराण। समुद्र मथन कश्यप सागर का हुआ था (कच्छप की पीठ मथी गई थी)।

विष्णुपुराण

सुमना (अम्बिकेय) पर्वत का एक खण्ड मैनाक या क्षेमक है।

तस्यापरे चाम्बिकेयः सुमनाश्चैव संस्मृतः।
अम्बिकेयश्च मैनाकं क्षेमकश्चैव तत्स्मृतम् ॥ मत्स्यपुराण १६६

रत्नाकर पर्वत कश्यप सागर के निकट है। यहीं समुद्र-मथन में १४ रत्न निकले थे। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि फ़ारस, बैबीलोन, अरब, सीरिया, अर्मीनिया, एशिया माइनर और लालसागर के तटवर्ती देश शाकद्वीप में थे।

मनुस्मृति से एक उदाहरण भारत की भौगोलिक सीमा का लीजिए।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तर गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं आर्यावर्तं प्रचक्षते ॥ मनु० २।१७,२२

अर्थात् पूर्व में समुद्र से लेकर पश्चिम में समुद्र तक पर्वतों के अन्तर्गत प्रदेश को विद्वान् लोग आर्यावर्त मानते हैं। पूर्व में सरस्वती, पश्चिम में दृषद्वती नदियों के मध्य जितने देश हैं उन सबको आर्यावर्त देश कहते हैं क्योंकि यह विद्वानों (देवों) ने बनाया है।

पूर्व का समुद्र बङ्गाल की खाड़ी है। पश्चिम का समुद्र अरब-सागर है। सरस्वती ब्रह्मपुत्र का नाम है जो आसाम में बहती है। दृषद्वती या दरगवती को आधुनिक इतिहासवेत्ताओं ने सिन्धु नदी मानकर जो ऐतिहासिक भूल की है उसका प्रायश्चित्त करना भी कठिन है।

सिन्ध को प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने भी सिन्धु ही लिखा है, जैसा कि वाल्मीकि-रामायण के निम्न श्लोक से प्रकट है—

अयं गन्धर्वविषयः फलमूलोपशोभितः ।

सिन्धोरुभयः पार्श्वे देशः परमशोभितः ॥ उत्तरकाण्ड

अर्थात् कन्द मूल-फल से शोभित सिन्धु नदी के दोनों ओर का परम सुन्दर देश गन्धर्वदेश है ।

वास्तव में दृषद्वती नदी वही है जिसे आजकल टाइग्रिस या दजला कहा जाता है और जो मेसेपोटामिया में बहती हुई फ़ारस की खाड़ी में समा जाती है । दृषद का रूपान्तर हुआ दृगद (दरग) और दरग से टाइग्रिस हो गया ।

"आर्यों का प्राचीन गौरव" ग्रन्थ के लेखक आर्य विद्वान् पं० कालीचरण शर्मा ने भी यही मत प्रकट किया है कि प्राचीन ईरान प्राचीन भारत का ही एक खण्ड था । उनके शब्दों में सुनिए 'प्राचीन आर्यावर्त की सीमा पूर्व में ब्रह्मपुत्रा (सरस्वती) से पश्चिम में दृषद्वती (टाइग्रिस) नदी तक थी । प्राचीन आर्यावर्त वर्तमान हिन्दुस्तान से कहीं अधिक विस्तृत था । वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान, बल्लूचिस्तान, ईरान, मेसेपोटामिया आदि देश आर्यावर्त में ही सम्मिलित होते थे । अब हमारे दुर्भाग्य से ये सब तीन-तेरह हो गये । इन देशों में बसनेवाली जातियाँ भी किसी समय आर्य जाति की मुख्य शाखाएँ थीं ।'

इतनी छान-बीन के पश्चात् हम निश्चयात्मक रूप से अब यह कह सकते हैं कि प्राचीन ईरान आधुनिक ईरान से बहुत बड़ा प्रदेश था और बृहत् भारत का पश्चिमी खण्ड था । वहाँ के बसनेवाले भी आर्य थे । फ़ारसी के प्रसिद्ध ग्रन्थ सिकन्दरनामा में भी अफ़ग़ानिस्तान, बलूचिस्तान और ईरान को बाज़े एरियान या एरियान का प्लेटो कहा गया है ।

राजनैतिक अवस्था :—प्राचीन ईरान कई प्रान्तों में विभाजित था जिनमें मुख्य चार थे—बैबीलोनिया, सीरिया, अरमीनिया और ईरान । ईरान के अन्तर्गत 'ईलाम' नाम का एक प्रसिद्ध उपप्रान्त था जिसमें

सुषा (Susa) नाम का प्रसिद्ध नगर ईरान का राजनैतिक केन्द्र था—Susa or Shush may indeed claim to be the oldest known site in the world. The aboriginies Negritos occupied the Susian plain. History of Persia Vol I page 59.

मत्स्यपुराण में भी सुषा नगरी का कथन इन शब्दों में किया गया है "सुषा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः" अर्थात् सुषा नाम की रम्य नगरी राजा वरुण की राजधानी है। ईरान का ईलाम प्रदेश सदैव से देवों (जम्बूद्वीप के राजाओं) का स्थान रहा।

खेद की बात यह है कि ईसा से तीन हज़ार वर्ष पूर्व का ईरान का कोई इतिहास आज हमें नहीं मिल रहा है और इसके पश्चात् का भी जो इतिहास मिला है वह क्रमबद्ध नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है कि ईरान ने भी प्राचीन मिस्र, रोम और भारत की तरह अनेकों ऐसी सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक क्रान्तियाँ देखी हैं जिनमें उसने साहित्य, इतिहास, धर्म, संस्कृति एवं अन्य मूल्यवान् निधियों की आहुति देकर अपना केवल नाम और प्रभाव स्थिर रक्खा है। हमें जो कुछ भी आज ऐतिहासिक सामग्री मिलती है वह अप्रामाणिक एवं अधूरी है। अभी ईरानियों ने भी स्वयं इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है, यद्यपि अभी हाल में कुछ प्रयत्न इस ओर अवश्य हुए हैं। योरपीय विद्वानों ने भी काफ़ी खोज की है। गुजराती भाषा में भी अनेकों पार्सी मत के ग्रन्थ लिखे गये हैं। पर फिर भी प्राचीन ईरानी साहित्य में इतना मसाला बिखरा पड़ा है कि कुछ पार्सी विद्वान् यदि जीवन खपा दें तो उनका चिरविस्मृत प्राचीन गौरव फिर से संसार के सम्मुख प्रकट हो जावे।

ईरानी पारद और पल्लव लोग पौराणिक वृषल क्षत्रिय हैं। मनुस्मृति अध्याय १० श्लोक ४३-४४ में उन क्षत्रियों का उल्लेख किया गया है जो कर्तव्यों से गिर जाने के कारण वृषल (जाति-च्युत) हो गये थे। वे श्लोक ये हैं :—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥
पौण्ड्रकाश्चोड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ।
पारदाः पह्लवाश्चीना किराता दरदाः खशाः ॥

ईरानी इतिहासकारों को पारदों के वंश-वृक्ष का यथार्थ ज्ञान नहीं है The origin of the Parthian dynasty cannot be ascertained with certainty. The founder of the dynasty was Arsaces. Artaxerxes Mnemon was names Asaces. The Arsacids were not a native dynasty but came from outside. History of Persia page 330, 331 वे केवल इतना जानते हैं कि मनुवंशी दीर्घबाहु (Artaxerxes Mnemon) कोई परदेशी थे जो पारदों के अरिशासी नामधारी राजा हुए। इन्हीं के वंशज पारदियम हैं। कनिंघम (Cunningham) साहब ने इस विषय में बहुत अन्वेषण किया है और इस बात का पता चलाया है कि अरिशासी पञ्जाब के दर्भविसार राज्य के राजा अविसार के भाई थे। वे लिखते हैं Aryan calls Abisares brother Arsace or the dragon worshipping Scythes of Media and Parthia पारसी इतिहासज्ञों की स्वाभाविक शङ्का का इस अन्वेषण से समाधान हो जाता है और हम इस परिणाम पर पहुँच जाते हैं कि पारद लोग अवश्य ही भारतवर्ष या जम्बूद्वीप से गये थे। पारदों के एक राजवंश के राजा कदाचित् दिलीप के पुत्र अनमित्र उपनाम शासन (Sasan) के वंशज हैं। दिलीप का राज्य ईरान में था।

स्मिथ के अन्वेषण से भी यही प्रकट होता है कि पह्लव भारत के प्राचीन शुद्ध क्षत्रिय हैं। वे लिखते हैं कि Recent research shows that Pallavas area indeginous tribe clan & caste and the names Pallavas & Pahlavas are so identical that most writers think that both mean

the same people. Page. 419. शासन मनुवंशी दीर्घबाहु (Artaxerxes Mnemon) के भाई थे। राजा रघु (दीर्घबाहु) के गाय चराने की जो कथा भारत में प्रचलित है ठीक उसी प्रकार की कथा शासन के बकरी चराने की ईरान में प्रसिद्ध है।

दिलीप के दो पुत्र अनमित्र और रघु थे। यही अनमित्र 'शासन' के नाम से ईरान के राजा हुए थे। दोनों देशों के राजवंश का वृत्त यह है।
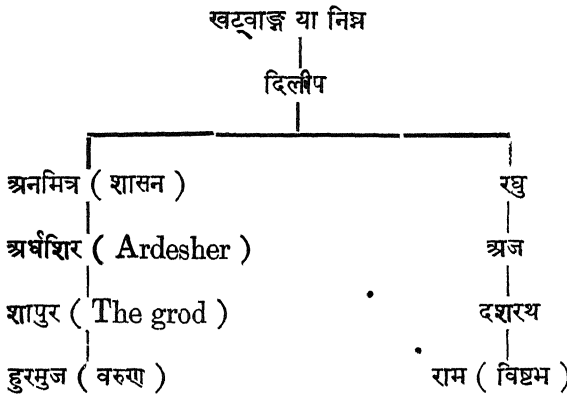
इसी लिए ईरान का प्रथम राजवंश शासनान (Sasanian) कहलाता है। कुछ पीढ़ियों के बाद यही वंश वरुणवंश के नाम से विख्यात हुआ। शासन या वरुण वंश के किसी भी राजा के विषय में कोई उल्लेखनीय बात नहीं कही जा सकती। इस वंश का सितारा कब और कैसे डूबा इस विषय पर इतिहास मौन है। हाँ, केवल इतना ज्ञात है कि इसी वंश में लगभग ईसा से तीन हज़ार वर्ष पूर्व सम्राट् गयोमर्ष का नाम ईरान के इतिहास में आता है। इसने ईरान की खोई हुई विभूति पुनः प्राप्त की। इसी लिए इसे ईरानी साम्राज्य का जन्मदाता भी कहा जाता है। यह सम्राट् न्यायप्रिय था, इसी लिए इसे पेशदाद (अर्थात् न्याय को सामने रखनेवाला) की उपाधि जनता से मिली थी।

वह विद्याभ्यासी तथा शिक्षाप्रेमी था। वह जाविदन खिरद (Eternal wisdom) नामक प्रसिद्ध पार्सी ग्रन्थ का लेखक माना जाता है। उसने अपने शत्रुओं को पराजित कर ईरानी साम्राज्य को सुदृढ़ बनाया।

गयोमर्ष की मृत्यु के बाद तहमोरस्प ईरान का राजा हुआ। तहमोरस्प बड़ा धर्मप्रिय राजा था। सौभाग्य से उसे मन्त्री भी विद्वान् मिल गया था। विद्वान् मन्त्री शग़ास्प की सहायता से तहमोरस्प ने उस समय के ईरानी साम्राज्य में प्रचलित अनेक धार्मिक एवं सामाजिक मतभेदों को दूर किया और पितर-पूजा प्रारम्भ कराई। देव-पूजा तो पहले से ही ईरान में प्रचलित थी ही पर देवों की प्रतिमाएँ नहीं बनती थीं। इस राजा ने पितरों और देवों दोनों की मूर्तियाँ बनवाना आरम्भ किया।

जिस समय देश में यह धार्मिक परिवर्तन किया जा रहा था उसी समय वहाँ एक भयङ्कर महामारी फैली। उस महामारी के प्रकोप से लाखों नर-नारी मर गये। ईरान के लोग उन दिनों इतने भयभीत थे कि भविष्य में उस सङ्कट से बचने के लिए प्रत्येक उपाय करने को तैयार थे। राजा को 'पितृपूजा' प्रारम्भ कराने का अच्छा अवसर मिल गया। उसने जनता में यह प्रचार कराया कि भविष्य में भयङ्कर रोगों से बचने के लिए मृत पुरुषों की पूजा करनी आवश्यक है। ईरान की भयत्रस्त जनता ने राजाज्ञा का स्वागत किया और पितृभक्ति और मृत सम्बन्धियों के प्रति प्रेम-भावना ने भी राजा की आज्ञा में सहयोग किया। लोगों ने अपने मृत कुटुम्बियों की स्मृति को चिरस्थायी करने के लिए पाषाण-मूर्तियाँ बनवा लीं और उनकी पूजा करने लगे। इस प्रकार ईरान में पाषाण-पूजा प्रारम्भ हुई।

तहमोरस्प का उत्तराधिकारी उसका भतीजा जमशेद विवंघम ईरान का प्रसिद्ध राजा हुआ। यह बड़ा चतुर और शिष्ट राजा था। इसने विश्वविख्यात "तख़्त-ए-जमशेद" का निर्माण कराया। देश में सुदृढ़ राज्य-व्यवस्था स्थापित की। उसने देश में अनेक सामाजिक सुधार किये। भारत के आर्यों की भाँति जमशेद ने भी ईरानी समाज में वर्ण-व्यवस्था

प्रारम्भ की। प्रथम वर्ण पुरोहितों का बनाया जिन पर धार्मिक कृत्यों का उत्तरदायित्व रक्खा। दूसरा वर्ण राज्यकर्मचारियों का था जो देश के प्रबन्ध के उत्तरदायी थे। तीसरा दल सैनिक लोगों का था जिनके ऊपर देश की रक्षा का भार था। चौथा वर्ग कृषकों, व्यापारियों और कारीगरों का था जो देश के आर्थिक सङ्गठन के स्तम्भ थे। यही सामाजिक व्यवस्था वर्तमान पार्सी समाज में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था की आधार बनी।

ईरान में सोमरस की उत्पत्ति और उसका प्रयोग भी इसी राजा के समय में प्रारम्भ हुआ। पार्सी जन्त्री में परिवर्तन हुआ और सौर मास का प्रवेश किया गया।

राजा जमशेद अनेक गुणों से सम्पन्न होने के साथ एक बड़ी निर्बलता का शिकार था। यह निर्बलता शायद उसकी सफलताओं के कारण ही पैदा हुई हो। वह निर्बलता यह थी कि वह अपने को देवतुल्य सर्वश्रेष्ठ पुरुष समझने लगा था। उसने अपने अन्तिम दिनों में इस प्रकार की घोषणाएँ कीं कि लोग उसे सर्वश्रेष्ठ समझकर अन्य देवों की भाँति उसकी भी पूजा किया करें।

मृत पुरुषों की पूजा का भाव तो लोगों में ज़मशेद से पूर्व ही जाग्रत् हो चुका था, किन्तु जीवित लोगों की पूजा का भाव जनता में अब तक जाग्रत् न हो पाया था। इसलिए ईरान की जनता का वह अप्रिय बन गया जिसका तात्कालिक परिणाम उसे तथा ईरान की जनता दोनो को भोगना पड़ा। वह परिणाम इतिहास की एक बड़ी घटना है।

कुछ दिनों बाद सीरिया के राजा ज़ोहाक (Zohek) ने ईरान पर आक्रमण किया। ईरान की प्रजा ने जो जमशेद के विरुद्ध हो चुकी थी, आक्रमणकारी शत्रुओं का स्वागत किया। युद्ध में राजा जमशेद मारा गया। ईरान का एक मुख्य प्रान्त 'ईलाम' ईरानी राज्य से निकाल कर सीरिया राज्य में मिलाया गया। यह घटना ईसा से दो हज़ार चार सौ पच्चास वर्ष पूर्व की है। इस युद्ध का विशेष वृत्तान्त मौरिस जेस्ट्राव (Moris Jestrow) कृत The civlization of

of Babylonia and Assyria (बैबीलोन और सीरिया की सभ्यता) नामक पुस्तक में पाठक पढ़ सकते हैं।

राजा जमशेद की मृत्यु के बाद उसका भतीजा 'फरीदुन' ईरान की गद्दी पर बैठा। राजा फरीदुन के विषय में अनेक मौखिक कथाएँ ईरानी समाज में आज भी प्रचलित हैं किन्तु उसका कोई भी प्रामाणिक इतिहास हमें प्राप्त नहीं होता।

फरीदुन के पश्चात् ईरान के इतिहास का अँधेरा युग प्रारम्भ होता है। यह अँधेरा युग ईसा की सातवीं शताब्दी तक बराबर रहा। इस बीच के समय की कोई भी ऐतिहासिक सामग्री आज प्राप्त नहीं है। हाँ, ईसा के ६६८ वर्ष पूर्व सीरिया के राजा 'असुरवनपाल' द्वारा ईरान पर आक्रमण किये जाने और 'ईलाम' प्रान्त को छीनकर सीरियन राज्य में मिला लेने का वृत्तान्त पार्सी इतिहास-ग्रन्थों में मिलता है।

कुछ समय बाद साइरस ईरान का राजा हुआ। उसने ईरानी साम्राज्य को पुनः संगठित किया। उसके समय में ईरानी राज्य उत्तर में कास्पियन सागर से लेकर दक्षिण में अरब सागर तक तथा पूर्व में सिन्धु नदी से लेकर पश्चिम में एजियन सागर तक फैल गया था। उसका उत्तराधिकारी सम्राट् कम्बीज़ हुआ जिसने ईरानी सभ्यता और संस्कृति मिस्रदेश तक फैलाई।

ईसा से ४९० वर्ष पूर्व ईरानी सम्राट् ज़रकसीज द्वारा यूनान देश पर चढ़ाई का वृत्तान्त प्राचीन इतिहास में मिलता है। प्रसिद्ध 'मैराथान' के मैदान में युद्ध हुआ। इस युद्ध में ईरान की पराजय हुई। इस ऐतिहासिक हार से ईरान का समस्त साम्राज्य पुनः छिन्न-भिन्न हो गया और ईरानी सम्राटों के अपने धर्म को विश्वधर्म बनाने के सारे मन्सूबे सदैव के लिए विफल हो गये।

प्रसिद्ध मैराथान की हार के बाद भी पवित्र ज़रथुस्ती आर्यधर्म का अनेक शताब्दियों तक संसार में बोलबाला रहा, पर सन् ६४२ ई० में अरब के ख़लीफ़ा उमर ने ईरान के शाह यज़्दज़र्द को नेहबन्द के युद्ध में

पारसियों के धर्मगुरू महात्मा जरथुस्त

हराकर ज़रदुस्ती धर्म की नींव ही उखाड़ दी। यद्यपि उसके तीन सौ वर्ष बाद तक ईरान के लोग अरबों से बराबर लोहा लेते रहे पर अन्त में इस्लामी तलवार की विजय हुई। फिर तो इस्लाम का ज़ोर इतना बढ़ा कि केवल ईरान ही नहीं वरन् पश्चिमी एशिया, अफ़ग़ानिस्तान, बलूचिस्तान, सिन्ध आदि सभी प्रदेशों को इस्लामी झण्डे के नीचे आना पड़ा। ईरान के जिन लोगों ने नया मत स्वीकार नहीं किया उन्हें या तो अपना सर देना पड़ा या देश ही छोड़ना पड़ा। जो लोग ईरान छोड़कर भागे वे अधिकतर भारतवर्ष के पश्चिमी तट पर आकर बस गये और उस समय से आज तक बसे हुए हैं। वे ईरानी अब पार्सी कहलाते हैं।

२—महात्मा ज़रथुस्त का आविर्भाव

संसार के शिक्षित समुदाय में कौन ऐसा व्यक्ति होगा जिसने पार्सी धर्माचार्य महात्मा ज़रथुस्त का नाम न सुना हो। 'अवस्ता' ग्रन्थ ने उनकी यशःपताका सारे विश्व में फैला दी है। उनके मधुर उपदेशों पर समस्त पार्सी (प्राचीन ईरानी) तथा ग़ैर पार्सी (अपार्सी) लोग मुग्ध हैं। उन्हें संसार के धर्माचार्यों में उच्चतम स्थान प्राप्त है। उनकी कीर्ति-कौमुदी केवल पार्सी सम्प्रदाय को ही आध्यात्मिक सागर में नहीं डुबो रही अपितु समस्त पूर्वी तथा पश्चिमी जगत् के तप्त मानस-हृदयों को नैतिक जीवन की सुशिक्षा देकर पूर्ण तृप्त कर रही है। महात्मा ज़रथुस्त केवल ईरान के ही नहीं वरन् विश्व के एक महापुरुष थे।

दुर्भाग्य से ऐसे महात्मा का ऐतिहासिक जीवन आज हमें पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हो रहा है। उनके जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ अज्ञात हैं। संसार के किसी भी प्राप्त ग्रन्थ में उनका प्रामाणिक जीवन-वृत्तान्त नहीं मिल रहा है। "जादस्प्रम" नामक प्राचीन पार्सी ग्रन्थ में

उनके जीवन की कुछ बिखरी हुई सामग्री प्राप्त हुई है जिसके आधार पर पश्चिमी विद्वानों ने उनका जीवन-वृत्तान्त लिखने का प्रयत्न किया है।

"आजकल तो ज़रथुस्त कहने से केवल एक आवस्तिक धर्म-प्रचारक का ही बोध होता है किन्तु प्राचीन काल में ईरान में अनेक ज़रथुस्त हुए हैं" (विश्वकोष)। उनका उल्लेख अवस्ता ग्रन्थ में मिलता है। इस ग्रन्थ से यह भी प्रकट होता है कि ज़रथुस्त एक उपाधि थी जो "आयु और ज्ञान में बड़े" व्यक्ति को प्रदान की जाती थी।

जिस प्रकार आज-कल 'दस्तूर' शब्द से अग्न्युपासक पार्सी पुरोहित का बोध होता है, प्राचीन काल में 'ज़रथुस्त' से भी वही बोध होता था। अर्थात् 'ज़रथुस्त' भी वर्तमान 'दस्तूर' की भाँति जाति का पण्डित अथवा पुरोहित हुआ करता था। हमारे पार्सी धर्मगुरु ज़रथुस्त भी इसी प्रकार के एक दस्तूर (पुरोहित) थे। उनका जन्म स्पितम-गोत्रीय माजी वंश (माजी ईरान का ब्राह्मण-वर्ग था) में हुआ था। इसी लिए उनका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में "स्पितम ज़रथुस्त" के नाम से किया गया है। "माजी ब्राह्मण भी सूर्य और छाया की सन्तति हैं। ये लोग अधिकतर पारद (ईरान) और अरमीनिया में रहते थे।"(भविष्यपुराण, अध्याय १३३)

महात्मा ज़रथुस्त के जन्मकाल के विषय में संसार के विद्वानों में बड़ा मतभेद है। ग्रीक इतिहास-लेखक जन्थोस (Zanthos) का विचार है कि ज़रथुस्त ट्रोजन-युद्ध के ६०० वर्ष पूर्व हुए। इतिहास-लेखकों ने ट्रोजन-युद्ध का समय ईसा से बारह सौ वर्ष पूर्व निर्धारित किया है। अर्थात् ज़रथुस्त आज से लगभग ३८ सौ वर्ष पूर्व हुए। अन्य विद्वान् अरस्तू (Aristotle) और यूडाक्स (Eudoxus) का मत है कि ज़रथुस्त का जन्म दर्शनाचार्य प्लेटो से ६ हज़ार वर्ष पूर्व हुआ। विश्व-विख्यात इतिहास-लेखक प्लीनी (Pliny) का कथन है कि ट्रोजन-युद्ध से पाँच सहस्र वर्ष महात्मा ज़रथुस्त का आविर्भाव हुआ। बैबीलोन के इतिहास-लेखक बैरोसस (Berosos) का कहना है कि ज़रथुस्त बैबीलोनिया के राजा थे जिन्होंने एक राजवंश की स्थापना की। उस

वंश ने ईसा से २२०० वर्ष पूर्व से लेकर दो हज़ार वर्ष पूर्व तक बैबीलोन पर शासन किया।

इस विषय में पार्सी विद्वान् प्रायः मौन हैं। पर कुछ का विश्वास है कि उनके धर्मगुरु दारा (Darius) के पिता हिस्तैस्पस के समकालीन थे और ईसा से लगभग ५५० वर्ष पूर्व हुए। भारतीय नररत्न लोकमान्य तिलक का कहना है कि ज़रथुस्त आज से ६ हज़ार वर्ष पूर्व हुए। प्रोफ़ेसर रामदेव अपने प्रसिद्ध "भारतवर्ष के इतिहास" में लिखते हैं कि "जन्दावस्ता' का निर्माणकाल महाभारत ग्रन्थ के समकालीन या उससे कुछ पूर्व हुआ प्रतीत होता है क्योंकि उसमें महर्षि व्यास का उल्लेख किया गया है।" पाठकों की विशेष जानकारी के लिए प्रोफ़ेसर जी की पुस्तक से व्यास-सम्बन्धी अंश यहाँ जैसा का तैसा लिखा जाता है—"अकनू बिरहमने व्यास नाम अज़हिन्द आमद बसदाना के अकिल चुना नस्त" (ज़न्दावस्ता आयत ६५) अर्थात् व्यास नाम का एक ब्राह्मण हिन्द से आया जिसके समान कोई पण्डित न था।

भविष्य पुराण में महाभारत से पूर्व वाल्हीक (वर्तमान बलख़) नगर में आयोजित एक विराट् सौत्रामणि यज्ञ का उल्लेख किया गया है। उस महायज्ञ में ईरानी सम्राट् गुशतास्प ने भारतीय विद्वानों को आमन्त्रित किया था। उसी यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए महर्षि व्यास वहाँ गये थे और ईरानी विद्वान् ज़रथुस्त से भेंट की थी। व्यास और ज़रथुस्त की भेंट का उल्लेख ज़न्दावस्ता आयत १६३ में भी हुआ है। वह आयत यह है—

"चूँ व्यास हिन्दी बलख़ आमद। गुशतास्प ज़रथुस्तरा बख़वांद" अर्थात् जब हिन्दवासी व्यास बलख़ आया तो गुश्तास्प ने ज़रथुस्त को बुलाया।

संस्कृत भाषा की प्रसिद्ध पुस्तक "इन्द्रविजय" में भी वाल्हीक नगर के सौत्रामणि यज्ञ की चर्चा की गई है। उस यज्ञ में इन्द्र और वरुण की मान्यता पर भारतीय और ईरानी विद्वानों में मतभेद हो

गया। भारतीय विद्वानों ने इन्द्र का समर्थन किया और ईरानी विद्वान् वरुण के पक्ष में रहे। भारतीय आर्यधर्म और आधुनिक ज़रथुस्ती धर्म में जो अन्तर है उसका मूल आधार भी यही विग्रह हुआ। ज़रथुस्त ने इन्द्र के स्थान पर वरुण को स्तुत्य माना और इसी लिए अनिन्द्र (इन्द्र के विरुद्ध) या आसुर धर्म को धारण किया और उसी का प्रचार किया।

पवित्रात्मा ज़रथुस्त के जन्म-काल के विषय में कितना ही मतभेद विद्वानों में क्यों न हो किन्तु यह सभी मानते हैं कि उनके पिता पौरोषस्प स्पितमगोत्रीय माजियों के सरदार थे। वह अज़र वैज़ान प्रान्त के मुख्य नगर रे (Rae) में निवास करते थे। रे नगर दरज़ नदी के किनारे आबाद था। यह नदी हुशीदरन पर्वत से निकली थी। पौरोषस्प के दो पुत्र उत्पन्न हुए। बड़े का नाम था आरास्प और छोटे का नाम था ज़रथुस्त। यही ज़रथुस्त पार्सी धर्म के आचार्य बने। उनके जन्म के विषय में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि जब ज़रथुस्त अपनी माता दोग्दो के गर्भ में आये तो उनकी माता ने एक स्वप्न देखा कि यह बालक भविष्य में संसार का एक महापुरुष होगा और स्वर्ग से पवित्र ग्रन्थ ज़न्दावस्ता और पवित्र अग्नि लावेगा।

माता दोग्दो के मुख पर ऐसी असाधारण कान्ति थी कि लोग उन्हें उनके लड़कपन से ही जादूगरनी समझने लगे थे, जिसके कारण उनके (दोग्दो) पिता को भी अनेक कठिनाइयाँ सहनी पड़ी थीं।

महापुरुषों में कुछ विचित्र लक्षण हुआ ही करते हैं। ज़रथुस्त में भी जन्म से ही कुछ विलक्षण गुण प्रकट होने लगे थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि जन्म लेते समय जहाँ अन्य बालक रोया करते हैं, हमारे धर्माचार्य हँसे थे। उनका हँसना देखकर उनके समीप की सभी दाइयाँ (उस समय उनकी माता के पास सात दाइयाँ थीं) घबड़ा गईं और कहने लगीं कि "क्या यह हँसना उनकी महत्ता का लक्षण है और अपनी हँसी के द्वारा वे संसार को धिक्कार रहे हैं!" नगर के लोग यह समाचार लेकर प्रसिद्ध ज्योतिषी तथा जादूगर दुराश्रु के पास पहुँचे

और उनसे इस असाधारण घटना का कारण पूछा। दुराश्रु ने उन्हें बतलाया कि "पवित्राचारी बालकों का जन्म इसी प्रकार होता है।"

जब ज़रथुस्त सात वर्ष के हुए तो बुर्जिनकुस (Aganaces) नाम के प्रसिद्ध विद्वान् के पास विद्याभ्यास के लिए भेजे गये और ८ वर्ष तक लगातार विद्याभ्यास किया। जब ज़रथुस्त १५ वर्ष के हुए तो पिता के घर आये। पिता ने उनके आगमन की ख़ुशी मनाई। उन्होंने अपने सभी कुटुम्बी जनों को इस पवित्र अवसर पर एकत्र किया और वस्त्र वितरण किये। ज़रथुस्त ने केवल कमरबन्द ग्रहण किया और उसे कुष्टि (यज्ञोपवीत) की भाँति कमर में धारण कर लिया। उनका अब अधिक समय धार्मिक स्वाध्याय में व्यतीत होने लगा।

इसी समय देश में चारे का भारी दुर्भिक्ष पड़ा। इस दुर्भिक्ष में चारे का इतना अभाव था कि पशु एक दूसरे की पूँछ के बाल तक काटकर खा गये थे। यह अवस्था देखकर उनसे न रहा गया और अपने पिता के चारा-भण्डार से कुछ चारा लेकर नगर के निर्धन जनों के भूखे पशुओं को खिला देते थे, जिससे उनके पिता कभी-कभी उनसे अप्रसन्न भी हो जाते थे। उत्तर में हमेशा वह यह कहते थे कि "जो चारा उनके पिता ने इकट्ठा किया उस पर नगर के सभी लोगों का अधिकार है।"

इसी बीच में उनका पाणिग्रहण हवोबी नामकी एक कन्या के साथ हो गया जिससे उनके कई सन्तानें भी हुईं।

जब हमारे आचार्य बीस वर्ष के हुए तो साधु-सङ्गत के लिए धर्मात्मा पुरुषों की खोज में अपने मातापिता, पत्नी आदि से बिना कुछ कहे-सुने घर से निकल पड़े और खोजते-खोजते औवर्तोदंग के पास पहुँचे। यह धर्मात्मा औवर्तोदंग कर्प वंश का प्रसिद्ध व्यक्ति था। सहस्रों भूखे जनों को अपने भाण्डार से नित्य भोजन कराने में अपनी सम्पत्ति का उपयोग किया करता था। ज़रथुस्त ने इस कार्य में इनको काफ़ी सहायता पहुँचाई। पर इतने से उन्हें सन्तोष न हुआ और वह एकान्तवास और चिन्तन के लिए हुशीदरन पर्वत पर चले गये। वहाँ सात वर्ष तक मौन रहकर तपस्या की।

दश वर्ष की घोर तपस्या और एकान्तवास के पश्चात् उन्हें ज्ञान हुआ और पहाड़ से नीचे आये। पर्वत से नीचे आते हुए 'वहदायती' नदी के किनारे देवदूत बहमन के द्वारा उन्हें हुरमुज़ (ईश्वर) के दर्शन हुए। फिर क्रम से ६ दैवी शक्तियों का पृथक्-पृथक् दर्शन किया। उनके प्रथम ईश-दर्शन के समय सारी प्रकृति प्रसन्न हो उठी थी। पार्सी ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख है कि हवन के लिए जब वे वहदायती नदी की ओर पानी लेने जा रहे थे तो देवदूत बहमन से भेंट हुई। तब बहमन ने उनसे पूछा—"तुम कौन हो? किस वंश के हो? और क्या चाहते हो?" ज़रथुस्त ने उत्तर दिया—"मैं पौरोषस्प का पुत्र स्पितम ज़रथुस्त हूँ और अपने जीवन में पवित्राचार (अशोई) प्राप्त करने का इच्छुक हूँ।" पुनः हमारे धर्माचार्य ने देवदूत से एक प्रश्न किया। प्रश्न यह था कि संसार में अच्छी, उससे अच्छी और सबसे अच्छी वस्तु क्या है? देवदूत ने उत्तर दिया—"मज़्द (ईश) का नाम अच्छा है, उस नाम का स्मरण करना उससे अच्छा है और उसकी (मज़्द) आज्ञा पालन करना सबसे अच्छा है।"

इस प्रकार सद्ज्ञान-प्राप्ति और ईश-सिद्धि का अनुष्ठान समाप्त करने के बाद श्वेत वस्त्र धारण किये हुए, एक हाथ में पवित्र अग्नि और दूसरे में छत्र और दण्ड लिये हुए महात्मा ज़रथुस्त वन से लौटकर ईरानी सम्राट् शाह गुशतास्प के दर्बार में उपस्थित हुए। शाह ने सम्मान-पूर्वक उनका स्वागत किया और उनसे धार्मिक विषयों पर वार्तालाप किया। इसी समय उन्होंने एक घोषणा भी की कि—"उन्हें ईश्वर से आज्ञा प्राप्त हुई है कि वे ईरान में एकेश्वरवाद का प्रचार कर सत्य मानवधर्म की स्थापना करें।"

दो वर्ष तक लगातार वह एक ऐसे साथी की खोज में रहे जिस पर पूरे विश्वास के साथ अपने पवित्र कार्य का उत्तरदायित्व डाल सकें। सौभाग्य से उनका भतीजा "मेद्योमाह", जो उस समय ईरानी विद्वत्-समाज का एक परम सम्मानित व्यक्ति था, उनके कार्य में प्रथम

सहायक हुआ। मेद्योमाह ने ज़रथुस्त को अपना धार्मिक गुरु मान लिया। धर्म-चिन्तन में उनकी आयु के दो वर्ष और व्यतीत हो गये। राज-परिवार में उनके धार्मिक सिद्धान्तों का प्रभाव बढ़ने लगा। शाह गुशतास्प ने ज़रथुस्त की सच्चाई और शिक्षा से प्रभावित होकर उनकी शिष्यता स्वीकार कर ली। शाह से पूर्व रानी केतायुन ने ज़रथुस्ती धर्म को स्वीकार कर लिया था। उसकी सहायता से शाह को ज़रथुस्ती धर्म के प्रचार करने में बड़ी सुविधा रही। जिस प्रकार सम्राट् अशोक ने बौद्धधर्म की और सम्राट् कौन्स्टेन्टाइन ने ईसाई धर्म की सेवा की थी उसी प्रकार शाह गुशतास्प ने तन, मन और धन से ज़रथुस्ती धर्म की सेवा की।

शाह, उसकी रानी, उसका पुत्र अस्पन्दियर, मन्त्री जामास्प, भाई ज़रीर तथा सगे सम्बन्धी 'फ़श औस्तर' और 'पेशोतन' आदि अन्य सभी अमीर व उमरा ने ज़रथुस्ती धर्म की दीक्षा ले ली।

शाह ने नये धर्म के अनुगामियों के पूजा-पाठ के लिए आतशकदे (अग्नि-मन्दिर) के बजाय कशमरनु सरवर वृक्ष (काश्मीर सरवर) का राजधानी में आरोपण किया। धीरे-धीरे सारा ईरान नये धर्म में दीक्षित हो गया।

शाह गुशतास्प के ज़रथुस्ती मत ग्रहण कर लेने पर उसका पड़ोसी तूरानी शाह अरजास्प उससे अप्रसन्न हो गया, जिसके कारण तूरानी सम्राट् ने दो बार ईरानी शाह गुशतास्प पर चढ़ाई की। प्रथम बार तो ईरानी सम्राट् ने तूरानी शाह को परास्त किया पर दूसरी चढ़ाई में ईरानी सम्राट् हार गया। सम्राट् का पिता लुहरास्प तथा अन्य बहुत से ज़रथुस्ती धर्मानुयायी अमीरों को तूरानी शाह के हुक्म से क़त्ल किया गया।

धर्माचार्य ज़रथुस्त को भी तूर बरातुर नाम के एक तूरानी सरदार ने क़त्ल कर दिया। यह तूर बरातुर उशीस्तार वंशीय मिनोचर का तीसरा पुत्र था। तूर बरातुर देवोपासक था और तूरानियों का धर्म-गुरु था। इसलिए ज़रथुस्त से द्वेष भी करता था। समय पाकर

उसने अपने धार्मिक क्षेत्र के प्रतिद्वन्द्वी का संहार किया। धर्माचार्य मृत्यु के समय सतहत्तर वर्ष और चालीस दिन के थे। अर्थात् पूरे ४७ वर्ष तक वे अपने धर्म का प्रचार कर सके।

रोमन इतिहासकार ज़रथुस्त के क़त्ल की घटना को सच्चा नहीं मानते। उनका कहना है कि आसमान से एक बुरा सितारा उतरा था जिसने ज़रथुस्त का नाश किया था। किसी पुरुष के हाथों वे नहीं मारे गये।

यह दुर्घटना अर्द्वशिस्त मास (पार्सी वर्ष का दूसरा मास) की ११वीं तारीख़ (ख़ुरशेद रोज़) को हुई थी पर क़बीसा (मलमास) के कारण अब दशम मास (देह) की ११वीं तारीख़ को धर्मप्रवर्तक ज़रथुस्त का मृत्यु-दिवस प्रतिवर्ष भारतीय ज़रथुस्ती पार्सियों में मनाया जाता है।

संसार के महापुरुषों में ज़रथुस्त का स्थान

आज संसार के लोग भगवान् बुद्ध, ईसा और हज़रत मुहम्मद पर कितना ही गर्व क्यो न कर लें, उनकी कठोर तपश्चर्याओं और घोर आपत्तियों की कितनी ही सराहना क्यों न करें, उनके चमत्कार-भरे जीवन के पृष्ठों को कितने ही आदर, आश्चर्य और श्रद्धा के साथ क्यो न पढ़ें और पढ़ावें और उनके पवित्र धार्मिक सिद्धान्तों पर कितने ही मुग्ध क्यो न हो जावें पर उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि इन महात्माओं से शताब्दियो पूर्व आर्य जाति ने ईरान के एक छोटे-से नगर में विश्व की उस अद्भुत आत्मा को जन्म दिया था जो तपस्या में गौतम से, चमत्कार में कृष्ण से, सहिष्णुता में ईसा से, भ्रातृभाव में मुहम्मद से तथा पवित्राचार में सबसे एक क़दम आगे रही और जिसने अपनी मधुर एवं प्रिय वाणी से, तपस्वी एवं संयमी जीवन से तथा आकर्षक एवं कल्याणकारी धार्मिक सिद्धान्तों से संसार के लोगों को दैवी प्रकाश दिखलाते हुए सहानुभूति, सहयोग, सदाचार, सहिष्णुता, पवित्रता तथा प्रेम का पाठ पढ़ाकर मानव-समाज का कल्याण किया था। वह अमर आत्मा आर्य संस्कृति के

महान् उद्धारक, प्राकृतिक मानवधर्म के सच्चे प्रचारक तथा आधुनिक पार्सी धर्म के प्रवर्तक महात्मा ज़रथुस्त की थी।

इस महात्मा के पवित्र जीवन की एक अनुपम घटना प्राचीन पार्सी ग्रन्थों से यहाँ उद्धृत की जाती है जिससे कि पाठकों को उसे पहचानने में सुविधा और सरलता हो।

जब अङ्गिरेमा न्यूष (शैतान) ने ज़रथुस्त को मज़्द की पूजा में लगा हुआ देखा तो उन्हें बहकाने का प्रयत्न किया और कहा कि "यदि तुम मज़्द की उपासना छोड़ दो तो ऐसा वरदान दूँ जिससे तुम ज़ोहाक की भाँति चक्रवर्ती राजा बनो" पर क्या महापुरुषों की पवित्र आत्माओं को संसार के क्षणिक ऐन्द्रिक सुख कभी फुसलाने में सफल हो सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। हमारे धर्माचार्य ने जो उत्तर शैतान को दिया वह हर व्यक्ति को हर समय स्मरण रखना चाहिए। उन्होंने कहा—"मैं कभी मज़्द की पूजा नहीं छोड़ सकता, चाहे मेरा तन, मेरा मन तथा मेरी आत्मा अभी नष्ट क्यों न हो जावे।" यह था उनका अपूर्व साहस और दृढ़ संयम।

उनके प्रचार-कार्य में यह विशेषता थी कि वह कभी भी किसी व्यक्ति से अपने सिद्धान्तों को ज़बरदस्ती न मनवाते थे और न अन्धानुकरण करने को ही कहते थे। उनका स्पष्ट कहना था कि "प्रत्येक पुरुष व स्त्री उत्तम से उत्तम उक्तियाँ सुने, बुद्धि से विचारे और फिर विश्वास करे।"

(Hear ye this with ears, behold ye this with the light of your mind. Fix ye now, each man, judging for himself the choice of faith.") यस्न ३२

दूसरे एक स्थान पर वह कहते हैं—"आप लोग जो दूर-दूर से आये हुए हैं सुनिए, ध्यान से सुनिये, जो कुछ मैं कहूँ उस पर ख़ूब विचार कीजिए।"

(Thenceforth I announcing speak, hear ye now harken ye who from far have come and ye from

nearer, for now think ye all right deliberate ye on what I say. यस्न (Yasma XLV). क्या कोई भी धर्म-प्रचारक ऐसी सहिष्णुता दिखला सकता है ? ईसा ने छल से और मुहम्मद ने बल से अपने-अपने मतों का प्रचार किया किन्तु ज़रथुस्त की सहिष्णुता का सिक्का आज तक पार्सी-हृदय में ऐसा दृढ़ बैठा हुआ है कि भारत में उनके तेरह सौ वर्ष के जीवन में किसी भी विधर्मी से कभी कोई साम्प्रदायिक झगड़ा नहीं हुआ ।

ज़रथुस्त केवल एक धर्म-संस्थापक और धर्म-प्रचारक ही नहीं थे किन्तु एक बड़े कवि भी थे । उनका नाम संसार के किसी भी प्राचीन महाकवि के साथ गौरव से रक्खा जा सकता है । पार्सी साहित्य का पवित्र ग्रन्थ 'गाथा' उनकी सर्वश्रेष्ठ काव्य-रचना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है ।

उनके कार्यों की समालोचना करते हुए योरप का एक विद्वान् वेस्ट सन् १९०० के जनवरी मास की पत्रिका कासमोपोलिटन में माजी पुरोहित (The Magian Priest) शीर्षक में लिखता है कि "उन्होंने पुराने धर्म में जितनी अच्छी बातें थीं वे सब ज्यों की त्यों रक्खीं, केवल बुरी बातों को दूर किया ।"

वही विद्वान् आगे लिखता है कि "उन्हें ईश्वर से आज्ञाएँ मिली थीं जिन्हें उन्होंने मनुष्य-समाज तक पहुँचाया । वे आज्ञाएँ शारीरिक एवं आत्मिक पवित्रता पर अधिक ज़ोर देती हैं । उन आज्ञाओं में गाय तथा कुत्ता जैसे लाभदायक पशुओं की रक्षा का बहुत ख़याल रक्खा गया है । वे आज्ञाएँ जल, थल और अग्नि की पवित्रता पर अधिक ज़ोर देती हैं । बहुत-सी आज्ञाओं से हम यह जान सकते हैं कि ज़रथुस्त सामाजिक सुधारक के साथ-साथ एक आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक भी थे ।"

३—ज़रथुस्त का धार्मिक सिद्धान्त

इस परिवर्तनशील संसार में हम किसी वस्तु को एक दशा में नहीं पाते। जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि तथा रात्रि के पश्चात् दिन का प्रादुर्भाव होता है और जन्म के पश्चात् मृत्यु तथा मृत्यु के पश्चात् पुनः जन्म होता है ठीक उसी प्रकार अनेक जातियाँ धर्म के आश्रित होकर उन्नति के सोपान पर चढ़ती हैं और अधर्म में आसक्त होकर अवनत होती हैं। शास्त्रकारों ने धर्म की उपमा प्रज्वलित अग्नि से दी है कि उसे चाहे जितना नीचे को गिराया जावे उसकी शिखा निरन्तर ऊर्ध्व मार्ग में गमन करती है। इसके प्रतिकूल अधर्म को पार्थिव द्रव्यों के रूपक में वर्णन किया है कि वे चाहे जितने ऊँचे उछाले जावें पर अन्त में पृथ्वी पर ही आ गिरते हैं। अस्तु, जब आर्य जाति ने ईर्ष्यारूपी मदिरा पान करना आरम्भ किया तो उसके भयङ्कर दुष्परिणाम उसी के सामने आये। धर्मराज युधिष्ठिर की द्यूतक्रीड़ा, महर्षि विदुर की नीति का तिरस्कार, दुर्योधन का हठ, सती साध्वी द्रौपदी को भरी सभा में नग्न करना आदि दुष्कृतियाँ केवल कौरवों ही के सर्वनाश का हेतु नहीं थीं, वरन उनका फल आज पर्यन्त समस्त आर्य जाति को भोगना पड़ रहा है। महाभारत-काल का भारत धन और वैभव की दृष्टि से पूर्ण सम्पन्न था, पर आचार और व्यवहार की मर्यादाएँ शिथिल हो चुकी थीं। इन दोषों के पर्याप्त उदाहरण महाभारत ग्रन्थ में विद्यमान हैं। और इन सारी बुराइयों का परिणाम ही महाभारत का युद्ध था। इस विशाल युद्ध में भारतवर्ष ने अपने कला-कौशल, विज्ञान, धन, वैभव तथा समस्त सामरिक शक्ति का स्वाहा कर दिया। इस युद्ध के पश्चात् देश में चारों ओर अविद्यान्धकार फैल गया। लोग विषयी, व्यभिचारी तथा लम्पट होने लगे; मद्य-मांस का सेवन इतना बढ़ा कि वेद तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में इनकी पुष्टि के मन्त्र ढूँढ़े गये। वैदिक इन्द्र, अहल्या, प्रजापति आदि शब्दों की खींचतान करके वेदों में

व्यभिचार सिद्ध किया गया और ऋषि-मुनियों को बदनाम कर निन्दित से निन्दित कार्य खुल्लमखुल्ला होने लगे।

"मद्यं मांसञ्च मीनञ्च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकरा स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥"

तथा "मातृयोनि परित्यज्य विहरेत् सर्व योनिषु" की दुन्दुभी चारों ओर बजने लगी और "अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः" वाली नीति सर्वत्र कार्य करने लगी। केवल भारतवासी ही इस विचित्र नीति से उपकृत नहीं हुए वरन् अन्य देश भी इस अनायास मुक्ति दिलानेवाले लटके से वञ्चित न रहे। यह वायु ईरान में भी पहुँची। प्राचीन वैदिक धर्म का लोप तो हो ही गया था। वहाँ एक ईश्वर के स्थान पर सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आकाश, जल, पृथ्वी आदि की स्वतन्त्र सत्ताएँ मानकर लोग उनकी पृथक्-पृथक् पूजा करने लगे थे। और भी अनेक अविद्या की बातें उनमे प्रविष्ट हो गई थीं जिनका पूर्ण वृत्तान्त हमें 'अवस्ता' ग्रन्थ में मिलता है।

ऐसे ही समय में महात्मा ज़रथुस्त का ईरान में आविर्भाव हुआ। महात्मा के चित्त पर इस परिस्थिति का इतना प्रभाव पड़ा कि वह अपना घर-बार छोड़कर वन में तप करने चले गये। जब उन्होंने अपने जीवन को अति शुद्ध और पवित्र बना लिया तो प्राचीन आर्य धर्म के पुनरुत्थान की दुन्दुभी बजाई। 'ज़न्दावस्ता' के प्राचीन अंशों को देखने से यह विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है कि ब्राह्मण धर्म के विकृत रूप के विरुद्ध ही ज़रथुस्ती पारसी धर्म की नींव पड़ी थी। इसी लिए ये दोनों धर्म एक-दूसरे के प्रतिकूल कहे जाते हैं। एक को यदि देव-धर्म कहते हैं तो दूसरे को असुर-धर्म। ज़रथुस्त ने अपनी अद्वितीय विद्वत्ता और अनुपम प्रतिभा से प्रचलित धर्म की कड़ी आलोचना की और प्राचीन आर्यधर्म के सच्चे स्वरूप को ईरानियों के सम्मुख ला उपस्थित किया। उस समय ईरान में प्रचलित आर्यधर्म का स्वरूप इतना विकृत हो चुका था कि उसकी ओर देखते ही रूह काँपती थी। इसी लिए हम देखते हैं कि भारत में भी

उसके कुछ दिन पश्चात् भगवान् बुद्ध व महात्मा चार्वाक को भी ईश्वर और ईश्वरीय ज्ञान वेद को दूर से ही नमस्कार करना पड़ा था और यदि ज़रथुस्त में तप और ज्ञान का अपार भण्डार न होता तो क्या उन्हें भी वही न करना पड़ता? महर्षि दयानन्द की भाँति उन्होंने भी मत-मतान्तरों के अन्धकार को नष्ट कर पवित्र आर्य धर्म का प्रकाश किया।

ज़रथुस्त ने अपने धर्म का नाम "मज़्द यस्नी ज़रथुस्ती" धर्म रक्खा। मज़्द या अहुर मज़्द ईश्वर का सर्वोत्तम नाम है। इस नाम का प्रचार भी पहले-पहल ज़रथुस्त ने ही किया। मज़्द धर्म देवयस्नी (देवपूजा) के विरुद्ध है। ज़रथुस्त ने केवल एक सत्य ब्रह्म की उपासना का प्रचार किया। ज़रथुस्त ने आदेश किया कि "आप केवल मज़्द पूजक बनें। केवल दुष्ट लोग ही देवपूजा करते हैं" (गाथा २६।३ पैरा १ यस्न ६५।१) अतः प्रत्येक ज़रथुस्ती अपने धर्म और आचार्य में इन शब्दों में विश्वास प्रकट करता है—"मैं ज़रथुस्त द्वारा प्रतिपादित केवल मज़्द का उपासक हूँ और ज़रथुस्त का अनुयायी हूँ। ज़रथुस्त देवों के विरोधी हैं और अहुर मज़्द के नियमों को माननेवाले हैं।" (गाथा ३६।३ पैरा ४ यस्न ५६.-४.)।

एक अन्य स्थल पर ज़रथुस्त ने कहा है—"आप सब लोग जो समीप या दूर बैठे हैं, सुनिए। मुझे प्रेरणा हुई है कि मैं आपको यह उपदेश करूँ कि आप लोग केवल उस विद्या के प्रकाशक परमात्मा के ही उपासक बनें ताकि दुष्ट लोग इस संसार को दूषित न कर सकें। मैंने अपने आध्यात्मिक नेत्रों से उसका दर्शन किया है। आप लोग केवल उसी मज़्द की उपासना करें।" (गाथा २६।३ यस्न ६)

ज़रथुस्ती धर्म की गाथाओं के पवित्र भजनों में सर्वव्यापक (वासना) परमात्मा का भाव ओतप्रोत है। वह परमात्मा यज़्द (प्राप्त करने योग्य), हर विस्पतवान (सर्वशक्तिमान्), हरविस्प आघा (सर्वज्ञानी), हरविस्र ख़ुदा (सबका सहायक), अबद (असीम), अबि अन्जान (अनन्त), बूनेस्ति (सृष्टिकर्त्ता), फ़ाख़्तन (अनादि), जमग (विराट्), परजतरह

(सर्वश्रेष्ठ), तुम अफ्रीक़ (पवित्र), अवबन्द (निर्लेप), परवन्दा (सर्व-व्यापक), अन ऐयाफ़ (जिसको कोई पा न सके), हम ऐयाफ़ (जो सबको पा सके), आदरो (सीधों में सीधा और टेढ़ों में टेढ़ा), गिरा (सबको रखनेवाला), अस्पेम (जिसका कोई कारण नहीं), चमन (कारण का कारण), सफ़न (वृद्धि करनेवाला), अफ़ज़ा (अधिकतर पैदा करने-वाला), नाशा (सबको बराबर मिलनेवाला), परवरा (पालक), यान (ध्येय), आई न आइन (निर्विकार), अन आइन (निराकार), ख़ाशिदतुम (परम दृढ़), मिनोतुम (अदृश्य), हरवस्तुम (सर्व व्यापक), हसिपास (धन्यवाद के योग्य), हर हमीद (भला चाहने-वाला), हर नेक फरह (भली आत्मावाला), वेशतरन (दुःखहर्त्ता), तरोनिश (ग़ालिब), अन औशक (अमर), फ़रशक (इच्छा पूरी करनेवाला), पज़ो दहद (भली इच्छा पैदा करनेवाला), ख्वाफ़र (न्याय-कारी), अफ़्फ़िहि आइशा (दयालु), अबरजा (महादानी), असनो (अजय), अरवो (स्वतंत्र), बरुन (बुराई से बचानेवाला), अफ़रेफ़ (जो ठगे नहीं), अदूई (अद्वैत), कामेरत (वरदानी), फ़रमाने हुक्म (जिसकी आज्ञा से इच्छा पूरी होती हो), आयेख़तन (जिसके भाग न हो सकें अर्थात् एक), अफ़रेमोश (जो बोल न सके), हमारना (हिसाब से काम करनेवाला), सनाया (जानने योग्य), अतश (अभय), अबिश (दुःखरहित), अफ़राज़् दम (बहुत बुलन्द), हम चुन (एकरूप), मिनोस्तिगर (अदृश्य होकर संसार रचनेवाला), अमिनोगर (शुद्ध), मिनोनहव (शुद्धता में छिपा हुआ), आदर बादगर (अग्नि को वायु करनेवाला), आदर नमगर (अग्नि को पानी कर देनेवाला), बादआदर-गर (हवा को अग्नि बनानेवाला), बाद नमगर (हवा को पानी करनेवाला), बाद गेलगर (हवा को राख बनानेवाला), बाद गैब गिरद तुम (हवा को मिट्टी बनानेवाला), आदर किबरिस्थ तुम (अग्नि को जवाहर कर देने-वाला), बाद गर जाय (हर जगह हवा देनेवाला), आब तुम (पानी देनेवाला), गैल आदर गर (ख़ाक को आग बनानेवाला), गैल नमगर

(ख़ाक को पानी करनेवाला), गर गर, गरो गर, गरा गर, गर, आगर, गर अगर आगर,आगर गर (कारीगरों का कारीगर), अगुमान (निर-भिमान), अजमान (असीम), अखुवान (वाणीहीन), आमाशथ (चतुर), फ़शोतन (प्रेरणा करनेवाला), पदमानि (योगी), फ़ीरोज़गर (विजयी), ख़ुदाबन्द (सृष्टि का स्वामी), अहुरमज़्द (महाज्ञानी), अवरिन कोहुन तवान (जीवों का रक्षक), अवारिन नोतवान (नये जीवों को बनाने की शक्ति रखनेवाला), वस्पान (सब जीवों तक पहुँचनेवाला), वस्पार (हर वस्तु तक पहुँचनेवाला), ख़ावर (दयालु), अहू (सर्वेश्वर), अव-क्षितार (क्षमाशील), दादार (न्यायी), रयोमन्द (प्रकाश-स्वरूप), ख़ोरेमन्द (तेजस्वी), दावर (यम), कैरफ़ेगर (गुणों का स्वामी), बुख़्तर (वृद्धि करनेवाला) और फ़शगर (आत्मा की उन्नति चाहने-वाला) है।

पार्सी प्रार्थना-पुस्तक "ख़ुर्दावस्ता" में मज़्द स्वयं कहता है—"मैं रक्षक हूँ, स्रष्टा हूँ, पोषक हूँ, ज्ञानी हूँ, उपकारी हूँ, मेरा नाम कल्याण करनेवाला है। मैं अग्नि हूँ, अहुर हूँ, मज़्द हूँ, पवित्र हूँ, यशस्वी हूँ, दूरदर्शी हूँ। शुभचिन्तक हूँ, दानी हूँ, मैं द्वेष-दूर करनेवाला हूँ, मैं विजयी हूँ, न मैं किसी को धोखा देता हूँ और न कोई मुझे धोखा दे सकता है। मैं आनन्द हूँ, शक्तिशाली हूँ, सर्वोत्तम हूँ, महान् हूँ इत्यादि।

इसी प्रकार दीनी ख़िरद में भी ईश्वर के लिए अनेकों विशेषणों का व्यवहार हुआ है "राजा पर प्रजा नहीं", "पिता पर पुत्र नहीं", "स्वामी पर सेवक नहीं", "स्वयंभू पर जन्म नहीं लेता", "प्रधान पर आश्रित नहीं", "अधिकारी पर क्रोधी नहीं" आदि..।

ज़रथुस्त देव शब्द और देवपूजा के इतने विरुद्ध थे कि वे अपने प्रत्येक संकल्प में उनका विरोध और केवल मज़्द की उपासना की घोषणा करते हैं और अपने अनुयायियों से भी वही प्रतिज्ञा कराते हैं। 'यस्न' ग्रन्थ के १२वें अध्याय में उनके अनुयायी अपने धर्म में नीचे लिखे शब्दों में अपना विश्वास प्रकट करते हैं।

"मैं अब से देवों को दूर भगाता हूँ। मैं देवों के विरुद्ध, मज़्द यस्नी ज़रथुस्त के सङ्घ का मज़्द उपासक हूँ। मैं उसी एक मज़्द पर, जो शुभ गुणों की खान है, पवित्र है, ज्योति-स्वरूप है, यशस्वी है, सत् पदार्थों का निर्माता है, जिसने गो आदि पशुओं की रचना की और अशोई (पवित्रता) को पैदा किया, जिसने आकाश के पिण्डों की रचना की, जिनके प्रकाश में यशस्वी लोग रहते हैं, अपना सर्वस्व अर्पण करता हूँ।"

(From Dr. Mills : S. B. E. Vol. XXXI P. 247).

देव शब्द तो स्वयं कोई बुरा शब्द नहीं—दिव धातु से बना हुआ है जिसका अर्थ होता है 'प्रकाशमान'। वैदिक संस्कृत साहित्य में तो इस शब्द का व्यवहार ईश्वर के लिए ही हुआ किन्तु लौकिक संस्कृत में कालान्तर मे इस शब्द का व्यवहार आदर-सूचक शब्द की भाँति अधिकाधिक होने लगा। इस शब्द का व्यवहार इतना बढ़ा कि लोग यह भूल गये कि जिस व्यक्ति अथवा शक्ति के लिए वे इस शब्द का व्यवहार कर रहे हैं उसमें दिव्य गुण हैं भी या नहीं। क्रूर से क्रूर राजे देव शब्द से सम्बोधित किये गये, दुःखदायी और नाशकारी शक्तियों (जड अथवा चेतन) के साथ भी इस शब्द का सम्बन्ध हुआ। केवल भारतवर्ष में ही ऐसा नहीं हुआ किन्तु उन सभी देशों में जिनमें 'देव' शब्द प्रचलित था इसी गिरे हुए अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। ईरान में भी ऐसा ही हुआ।

ज़रथुस्त के समय में ईरान में देव शब्द का प्रयोग मज़्द के अतिरिक्त अन्य देवतागणों के लिए भी होता था। राजा ज़ोहाक (Zohak) जैसे नृशंस एवं क्रूर शासकों के साथ देव शब्द जोड़ा जाता था। नैतिक पापों तथा रोगों के कारणों के साथ भी देव शब्द चलता था। इसी लिए ज़रथुस्त को इस शब्द से इतनी चिढ़ पैदा हो गई कि उन्होंने इस शब्द का मूल अर्थ ही बदलकर उसका अर्थ "ईश-विरुद्ध" कर दिया और अपना धर्म देवधर्म या देवपूजा (देवयस्न) के विरुद्ध असुरधर्म (अहुर-धर्म) बतलाया।

अहुर मज़्द के अतिरिक्त उन्होंने ईश्वर के लिए ६ विशेष और महत्त्वपूर्ण नाम और व्यवहृत किये हैं जिनका उल्लेख गाथाओं में भी किया गया है। यों तो मज़्द के अनेकों नाम पार्सी धर्मग्रन्थों में दिये गये हैं जिनमें से १०१ नामों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

मज़्द के अतिरिक्त ६ पवित्र नाम ईश्वर के ये हैं :—

१—बहमन—शुभ विचारवाला (संस्कृत—निरामय)-दूसरा अर्थ-जल।

२—अर्दवहिस्त—श्रेष्ठ स्थितिवाला (सं० निर्मल)—आकाश।

३—शहरेवर—सर्वशक्तिमान्—अग्नि।

४—स्पेन्ता अर्मती—(गुजराती—स्पेन्दामर्द)—भक्ति साधक—पृथ्वी।

५—और वतात (खोरदाद)—परब्रह्म—वायु।

६—अमरतात—अमर—आत्मा।

ये ६ नाम तथा सातवाँ अहुर मज़्द ईश्वर के पवित्र सात नाम हैं। इन नामों से ईश्वर की प्रायः सभी मुख्य शक्तियों वा गुणों का बोध हो जाता है। इनका प्रयोग गाथाओं में इसलिए किया गया है कि लोग परमात्मा का सच्चा विराट् स्वरूप समझ सकें। सृष्टि का आदिकारण होने से तथा विश्व का सञ्चालन करने के कारण ईश्वर का नाम मज़्द या अहुर मज़्द पड़ा। विश्व में दया का प्रवाह बहाने के कारण उसको बहमन कहा गया। संसार की गति को नियमपूर्वक रखने के कारण उसे अर्दवहिस्त कहते हैं। विश्व के प्रत्येक कार्य में उसकी महत्ता दीख पड़ने के कारण वह 'शहरेवर' कहलाता है। संसार को प्रेम करने के कारण उसका नाम स्पेन्ता अर्मती हुआ। अनन्त शक्तिवाला होने के कारण वह और वतात है और नित्य होने से उसका नाम अमरतात पड़ा। उसके ये नाम प्रकृति के तत्त्वों के भी द्योतक हैं। पर इन उच्च दार्शनिक तत्त्वों को समझने में लोगों ने बड़ी भूल की है। इसलिए धीरे-धीरे कालान्तर में स्वयं पार्सियों में भी यह विचार पैदा होने लगा कि ये ६ स्वतन्त्र शक्तियाँ हैं जो सृष्टि सञ्चालन में मज़्द की सहायक रहती हैं।

———

४—ज़रथुस्त का मुख्य आदेश

दार्शनिक गुत्थियाँ सुलझाने के पश्चात् महात्मा ज़रथुस्त ने साधारण मनुष्यों के कल्याण के लिए, दैनिक जीवन को उच्च बनाने के लिए, कुछ ऐसे आदेश किये जो उस समय ईरान की परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल थे, जिनको मानकर ईरान के लोग सांसारिक उन्नति करने में सफल हुए। वे आदेश आज पर्यन्त कुछ हेर-फेर से पार्सी समाज में मान्य समझे जाते हैं।

वह जानते थे कि संसार के रङ्ग-मञ्च पर अपना अभिनय सफलतापूर्वक दिखलाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को दृढ़ एवं शक्तिशाली होना चाहिए; क्योंकि निर्बलों की सहायता तो प्रकृति भी नहीं करती। वह तो केवल समर्थ और शक्तिमानों को ही चाहती है। इसी लिए स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए ज़रथुस्त ने स्वास्थ्य व पवित्रता के नियमों पर अधिक बल दिया। उनकी बतलाई हुई ऋतुचर्या में 'शहरेवर' मास में शरीर को व्यायामादि से पुष्ट बनाना, 'अस्पन्दरमेद' मास में स्वास्थ्य का ज्ञान प्राप्त करना तथा 'खोरदाद' मास में जल की शुद्धता पर ध्यान रखना आदि ऐसी बातें हैं जिनसे स्पष्ट विदित होता है कि उनकी इच्छा थी कि ईरान के लोग स्वस्थ रहकर परमपिता परमात्मा की रचना के गूढ़तम रहस्यों को समझें।

ईरान कृषिप्रधान देश था इसी लिए ज़रथुस्त ने उपदेश किया कि युवा और लाभदायक पशुओं को मारना पाप होता है।

ज़रथुस्त के मुख्य आदेश ये हैं। वे प्रत्येक पार्सी के जीवन में पथ-प्रदर्शक का कार्य करते हैं।

(१) तू अहुर मज़्द को प्रेम कर। वही सब से श्रेष्ठ उपास्य है। उसके अतिरिक्त और किसी के आगे सर न झुका।

(२) तू अपने रचयिता परमात्मा की प्रतिदिन उपासना कर और अपनी सन्तान को भी ऐसा करना सिखा।

एक पारसी दस्तूर

(३) भोज दिवसों (पर्व) को पवित्र रख क्योंकि वे रक्षक देव-दूतों के परिवर्तन की सूचना देते हैं।

(४) मज़्द के बाद अपने माता-पिता की आज्ञा पालन कर क्योंकि उन्होंने तुझे जन्म दिया है।

(५) दूसरे की वस्तु न ले।

(६) असत्य भाषण न कर।

(७) अपने पड़ोसी की पीठ पीछे निन्दा न कर।

(८) तू आलसी न बन क्योंकि आलस्य से शरीर निर्बल होता है।

(९) तू किसी भी पुरुष, स्त्री अथवा बालक से द्वेष न कर।

(१०) अपनी सन्तान को ताड़न द्वारा सुमार्ग पर ला।

(११) तू अभिमान न कर क्योंकि तेरा कुछ भी नहीं है।

(१२) सगोत्रिय वंश की स्त्री से विवाह न कर। विवाहिता स्त्री के और तेरे वंश में कम से कम पाँच पीढ़ियों का अन्तर होना चाहिए।

(१३) जितना तू दूसरों को देता है उससे अधिक प्राप्ति की इच्छा न कर।

५—मनुष्य का कर्तव्य और अकर्तव्य

धर्म में तीन मार्ग होते हैं, ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग तथा कर्ममार्ग अथवा यों कहिए कि ईश्वर-प्राप्ति के तीन साधन हैं ज्ञान, भक्ति तथा कर्म। महात्मा पुरुषों के जीवन में हम इन तीनों का सम्मिश्रण पाते हैं। पर साधारण पुरुषों में ऐसा कम देखने में आता है। वे अपने में जिस शक्ति का बाहुल्य देखते हैं उसी के अनुकूल अपना आचरण करते हैं। यही बात किसी देश की साधारण जनता के विषय में भी कही जा सकती है। ईरान की जनता कर्मशील थी। इसी लिए ज़रथुस्त ने कर्म-मार्ग पर ही विशेष बल दिया। आज भी पार्सी जाति उसी मार्ग पर चल रही

है। अवस्ता ग्रन्थ में कहा गया है कि जब अङ्गिसेमान्युष ज़रथुस्त को मारने आया तो उन्होंने एक मन्त्र पढ़ा जिससे डरकर अङ्गिरसैमान्युष भाग गया। वह मन्त्र "अहूनवर" मन्त्र के नाम से विख्यात है। सारे पार्सी साहित्य में यह मन्त्र सब मन्त्रों से श्रेष्ठ माना जाता है। इसके एक बार पाठ करने से ही सम्पूर्ण 'अवस्ता' के पाठ का पुण्य प्राप्त हो जाता है। इस मन्त्र के विषय में पार्सियों का यह विश्वास है कि यदि कोई व्यक्ति इस मन्त्र को अतिशय पवित्र मन, वचन और कर्म से पढ़े तो वह पानी और कुहरे की आफ़तों से, नदी के पुलों तथा अन्य मार्गों की कठिनाइयों से, देवपूजकों की मण्डली से, लुटेरों के आक्रमण तथा अन्य कुसमय में आई हुई किसी भी आपत्ति से छुटकारा पा जाता है। वह मन्त्र यह है "यथा अहूवर्यो अथा, रतुश् अषात् चित् हचा, वङ्हेउश दज़्दा मनङ्‌ह्‌ोष्य श्योथन, नाम अङ्‌हेउश मज़्दाई, ख्शथ्रॆमेचा अहुराई आयिम्, द्रे गुब्यौ ददत्वास्तारेम्।" अर्थात् जिस प्रकार एक अहु (संसार का स्वामी) सर्वोत्तम इस स्थूल जगत् पर होता है उसी प्रकार एक रतु (ऋषि) अपने अष (सत्य) के कारण सब भुवनों में सर्वोत्तम है। वाहुमन अमशास्पन्द की भेंट उनके लिए है जो सृष्टि के स्वामी के लिए कार्य कर रहे हैं। अहुर की शक्ति उस मनुष्य को प्राप्त होती है जो योग्य पात्रों को सहायता देता है।"

इस मन्त्र में तीन बातें कही गई हैं। प्रथम यह कि सत्य पर आरूढ़ ऋषि या महात्मा का स्थान एक चक्रवर्ती राजा (अहु) से ऊँचा है। दूसरी बात यह कि जो ईश्वर के लिए कार्य करता है (गीता—निष्काम कर्म) उसे वाहुमन अमशास्पन्द की प्राप्ति होती है अर्थात् उसका मन शुद्ध होता है। तीसरी बात यह कि योग्य पात्रों की सहायता करने से अहुर शक्ति की प्राप्ति होती है। बस यही पार्सी धर्म की उत्कृष्टता है। पार्सी धर्म का सार हम एक शब्द परोपकार में निकाल सकते हैं। सच्चे पार्सी का जीवन दूसरों के लिए होता है। वह अपने लिए न कुछ करता है न माँगता है। इसी आदर्श को स्थापित करने के लिए महात्मा ज़रथुस्त ने सुविचार

(हुमत), सुवचन (हुख्त) और सुकर्म (हुवर्श्न) का उपदेश किया था।• अब हम यहाँ कुछ ऐसे कर्तव्य कर्मों का उल्लेख करते हैं जिनका उल्लेख 'अवस्ता' ग्रन्थ में किया गया है।

(१) अशोई (पवित्रता)—इसमें सभी प्रकार की पवित्रता सम्मिलित है। प्रत्येक पार्सी को आरम्भ से ही इसका पाठ पढ़ाया जाता है। अवस्ता में कहा गया है कि पवित्रता सर्वश्रेष्ठ गुण है। उसी का स्वागत करना चाहिए।

(२) स्रोश (नम्रता)—प्रत्येक ज़रथुस्ती अपनी दैनिक मज़्दी प्रार्थना में यही माँगता है कि मुझे नम्रता प्राप्त हो।

(३) **मर्ज़दिका** (दया) यही बलवानों का आभूषण है (Desirable Kingdom......and mercy, the protector of the helpless.)

(४) अख्तितिथि (शान्ति) इसे वहमन का सहायक कहा गया है The good mind and please that keeps connection.

(५) सुख में कृतज्ञता प्रकट करना तथा दुःख में ईश्वरेच्छा की भावना।

(६) पाप का प्रायश्चित्त—पाप का प्रायश्चित्त करने से मनुष्य पाप से छूट तो जाता है पर दण्ड से मुक्त नहीं होता।

(७) माता-पिता, भाई-बन्धु, सम्बन्धी, पड़ोसी तथा देशवासियों के प्रति प्रेम He shall not see paradise with whom his parents are not pleased.

(८) राजभक्ति—प्रत्येक पार्सी का कर्तव्य है कि वह राजभक्त हो किन्तु राजा वही है जो जनता का कल्याण करे। Let good kings reign I bless the royal Ruler of Ahur Mazd.

(९) गोस्पन्द (दूध देनेवाले तथा लाभदायक जानवर) की रक्षा तथा हानिकारक (खरवस्त्ररा) जानवरों (जैसे सर्पादि, सिंह) को नष्ट करना।

(१०) अतिशुद्ध वाक्—Truly uttered speech is the most victorious in assembly.

(११) परिश्रम—प्रत्येक कार्य में परिश्रम करना और प्रातःकाल उठना Arise O man !......Lo ; Here is Bushyanata which wishers delay coming upon you who lulls to sleep again the whole living world as soon as it has awoke. Long sleep, a man does not behove thee.

(Vendided XVIII .16),

(१२) आत्मसंयम तथा आत्म-विश्वास Independent through ones own strength and ability.(Yasn IX.25)

कुष्टि खोलना और बाँधना—सोकर उठने पर मन्त्र पढ़कर कुष्टि खोलना। खोलकर पुनः मन्त्र पढना। खोलकर हाथ में लेकर मन्त्र पढ़कर कमर में बाँध लेना। बाँधने के बाद फिर मन्त्र पढ़ा।

गोमूत्र लगाने से पूर्व कुष्टि खोलना—बायें हाथ गोमूत्र लेकर।

दोनों हाथ, आँख, कानं, नाक, पैर प्रार्थना आदि जो करनी है वह कर ली। फिर बाँध लिया।

पाख़ाना जाते समय गाँठ बँधी होनी चाहिए। मन्त्र पढ़कर पाख़ाना जाना। पाख़ाना फिरने के बाद मन्त्र पढ़ना। हाथ-मुँह धोकर।

लोटा प्रायः टट्टी का अलग रहता है पर यात्रा में लोटा मिट्टी से माँजते भी हैं।

हाथ-मुँह, पैर आदि धोकर कुष्टि का मन्त्र पढ़कर कुष्टि खोलना और बाँधना।

खाना खाते समय कुष्टि खोलना और फिर बाँधना।

कुष्टि के मन्त्र का सार—

वह मन्त्र जब कोई आदमी हमारी ओर कपट रक्खे, तेरे सिवा कौन मेरी रक्षा करेगा !

तूने पवित्राचार दान किया। तू भले मन की बरकत से उसे दूर कर। दीनदारी से ज़िन्दगी बसर करने का तू ज्ञान प्रदान कर। तेरी पासाबनी (रखनेवाला) आवस्ता का कलाम उस वैरी को मारे। दोनों लोकों में हमारा भला हो।

इस रीति से रहनुमाई करने का मुझे एक गुरु बता।

ओ मज़्द, जिस धनी (भक्त) को तू चाहता है उसका भला मन द्वारा सरोब से मित्रता हो। ओ हुरमुज़्द, ओ स्पन्दार्मद दुःख देनेवाले से बचा। तमाम बुरी शक्तियाँ उत्तर दिशा में नष्ट हो जायँ, गड़ जायँ, जिससे कि अशोई की सारी दुनिया में हानि न पहुँचे।

ताबेदारी और आबादी को नमस्कार हो।—खोलते समय का मन्त्र।

(१३) सभी प्राणियों पर दया, दान तथा उदारता का भाव। May in this house charity triumph over miseries (यस्न ६०, १५) पर दान सुपात्र को ही देना चाहिए।

(१४) शिक्षा का प्रचार करना "Let him who wants knowledge be taught the holy word."

(१५) अतिथि सत्कार—If I have neglected to grant hospitality to a stranger who came into the town I hereby repent with thoughts, words and works.

पार्सी धर्म में मुख्य अकर्तव्य (पाप) यह माने जाते हैं—

(१) अन्याय, लालच, अशिष्टता, आज्ञा का उल्लङ्घन तथा क्रूरता "हम द्रुज (पाप) को जीत लें। इस घर में द्रुज पर अशोई की विजय हो।" (यस्न ६०, ५)

"Let the tyrant be humbled."

(२) ईर्ष्या न करना, बदले का भाव न रखना "Who so is malicious and revengefulman make him broken minded."। (यस्न ९, २८)

(३) असत्य भाषण—असत्य शब्दों का परित्याग करना चाहिए।

(४) अपशब्द व्यवहार—अपशब्दों का व्यवहार करनेवाले नरकगामी होंगे "Those who use abusive language shall go to the house of Druj." (गाथा ३६ । ३, २)

(५) झूठी शपथ, झूठी गवाही, प्रतिज्ञा-भङ्ग, धोखा, अलाप, भीख माँगना आदि।

(६) अभिमान, क्रोध, निन्दा आदि "Pride shall be smitten, Scorn shall be smitten.'

"Slander not, "Envy is the law of the Devas.

(यस्न ९, ५)

६—अंगिरा मान्युष The (Spirit of Evil—शैतान)

ईश्वर के एकत्व में दृढ़ विश्वास स्थापित करने के पश्चात् महात्मा ज़रथुस्त ने उस गूढ़ तथा महाजटिल प्रश्न को हल करने का प्रयत्न किया जिसने संसार के उच्चतम मस्तिष्कों को समय-समय पर आकृष्ट किया है। वह प्रश्न यह है कि न्यायकारी, दयालु तथा पूर्ण ज्ञानी परमेश्वर की सृष्टि में सुख और दुःख, भलाई और बुराई, न्याय और अन्याय, पवित्रता तथा अपवित्रता आदि दो भिन्न गुण अथवा शक्तियाँ एक साथ कैसे रहती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि अहुर मज़्द की सृष्टि में अंगिरामान्युष (Angyra-Mainyu) या शैतान का निवास कैसा?

इस विद्वान् दार्शनिक ने इस पहेली का जो उत्तर दिया वह बहुत ही तर्क एवं विज्ञानपूर्ण है। वह कहता है कि विश्व में दो कारण (शक्तियाँ) सदैव विद्यमान रहते हैं। वे यद्यपि रूप और गुण में एक

दूसरे से भिन्न हैं पर हैं वास्तव में एक ही। उन्हीं दोनों कारणों या शक्तियों से मिलकर भौतिक तथा आध्यात्मिक अथवा सत् और असत् सृष्टि की रचना हुई है। सत् पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला कारण वाहुमन (शुभ मन) कहलाता है और असत् पदार्थों की रचना करनेवाला अकुममन (अशुभ मन) कहलाता है।

विश्व-सृष्टि के यही दो कारण हैं जो आदि में अभिन्न होते हुए भी भिन्न प्रतीत होते हैं। इसी लिए इनको गाथाओं में 'यमौ' (दो) शब्द द्वारा निर्दिष्ट किया है। ये कारण हर समय और हर स्थान पर मौजूद रहते हैं। ईश्वर तथा पुरुष में भी मौजूद रहते हैं। ये कारण जब ईश्वर (अहुर मज़्द) में रहते हैं तब उन्हें बाहुमन और अकुम मन न कहकर 'स्पेन्ता मन्यु' (पवित्र शक्ति) और 'अंगिरामन्यु' (दुष्ट शक्ति) के नाम से पुकारा जाता है। प्रकृति के सभी सत्य, शिव और सुन्दर पदार्थों का जन्मदाता 'स्पेन्ता मन्यु' माना जाता है और समस्त असत्य, हानिकर एवं कुरूप वस्तुओं का निर्माता 'अंगिरामन्यु' होता है। पर 'अंगिरामन्यु' अहुर मज़्द से भिन्न कोई स्वतंत्र शक्ति नहीं है जो उसकी रचना में बाधक होती हो। एक ही शक्ति के दो भिन्न रूप हैं, दो भिन्न गुण हैं, उनमें कोई वास्तविक भेद नहीं। ठीक यही विचार भारतीय उपनिषद्कारों ने "स विष्णुः स रुद्रः स इन्द्रः स कालाग्निः" आदि शब्दों में कहा है। उपनिषद् के 'रुद्र' और 'कालाग्नि' ही ज़रथुस्त के अंगिरामन्यु हैं।

नवम्बर सन् १६०७ की कण्टेम्पोरेरी रिव्यू (Contemporary Review) नाम की मासिक पत्रिका में एक विद्वान् काउन्टर मार्टिन सिसरको (Counter Martinays Cisoresco) इस ज़रथुस्ती दार्शनिक तत्त्व की समालोचना करते हुए लिखता है कि "वास्तव में यदि देखा जावे तो पार्सी धर्म का यह सिद्धान्त गूढ़ फिलासफी से भरा हुआ है। प्राचीन पार्सी गाथाओं में यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि सृष्टि के आरम्भ में अहुरमज़्द ने दो दैवी शक्तियों को जन्म दिया जो

सदा एक दूसरे की विरोधी हैं। इन्हीं दो शक्तियों के मेल से सृष्टि का कार्य चलता है। इन दोनों शक्तियों ने विश्व का कार्य सफल बनाने के लिए प्रथम जीवन और अजीवन को उत्पन्न किया। बिना इन दोनों के सृष्टि की रचना सम्भव नहीं। वस्तुतः यह 'बुरी शक्ति' भी ईश्वर का एक रूप है। इसी शक्ति के द्वारा हम भले-बुरे का ज्ञान करते हैं। जिस प्रकार हिन्दू-सांख्यवाद पुरुष और प्रकृति के मेल से सृष्टि की रचना मानता है उसी प्रकार पार्सी मत 'स्पेन्तामन्यु' और 'अङ्गिरामन्यु' के मेल से सृष्टि की रचना मानता है। पर जैसे अन्त में प्रकृति पर पुरुष की विजय होती है वैसे ही अङ्गिरामन्यु पर स्पेन्तामन्यु विजयी होता है। अङ्गिरामन्यु प्रकृति का एक स्वरूप है और 'स्पेन्तामन्यु' पुरुष का। हमारी आत्मा तभी तक अङ्गिरामन्यु के वशीभूत रहती है जब तक कि वह स्पेन्तामन्यु का अनुभव नहीं करती। परन्तु हमारे अन्दर 'स्पेन्तामन्यु' (दैवी शक्ति) भी है अतः हमें चाहिए कि हम उसी शक्ति का अपने अन्दर विकास करें और उसी को अनुभव करें।"

इस विषय पर मैं एक विदेशी विद्वान् की सम्मति पाठकों के लिए और अनूदित कर उद्धृत करता हूँ। वह विद्वान् हैं 'आधुनिक ज़रथुस्ती' (A Modern Zoroastrian) ग्रन्थ के लेखक सैमुअल लैंग (Samuel Laing)। लैंग महोदय लिखते हैं कि "इस गूढ़ दार्शनिक तत्त्व को, जो पार्सी धर्म की एक विशेषता थी, समझने में बहुत से योरोपीय विद्वानों ने बड़ी भूल की है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि ज़रथुस्त ने द्वैतवाद का प्रचार किया परन्तु वे इस मूल तत्त्व को भूल जाते हैं कि इन युगल शक्तियों को उत्पन्न करनेवाला अहुरमज़्द एक और अद्वितीय है।" वे आगे लिखते हैं कि "इस बारीक तत्त्व की ओर आधुनिक संसार शीघ्रता से पहुँच रहा है। हक्सले जैसे वैज्ञानिक, हरबर्ट स्पेन्सर जैसे तत्त्ववेत्ता और टेनीसन जैसे कवि उसे स्वीकार करेंगे। डाक्टर टैम्पल जैसे प्रबुद्ध ईसाई धर्म-प्रचारक भी उस सिद्धान्त से दूर

नहीं जा सकते जब कि वे परमाणुओं में तथा सूक्ष्म शक्तियों में ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हैं जिसकी प्रकृति के नियमों के मिस से प्रदान की हुई प्राचीन छाप इतनी पूर्ण थी जिसको किसी दूसरे के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।" (पृष्ठ २०३–०४)

वही विद्वान् विवेचन करते हुए एक स्थल पर और भी स्पष्ट शब्दों में कहता है—

"जिस प्रकार भौतिक जगत् में ये दो सिद्धान्त अहुर मज़्द की संरक्षकता में कार्य करते हैं उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में दो नियम कार्य करते रहते हैं जो उसे भलाई और बुराई की ओर अग्रसर करते हैं। एक जिसे 'बाहुमन' कहते हैं, शुभ कर्मों की ओर प्रेरणा करता है, दूसरा अकुममन जो बुराई को ओर ले जाता है। ये दोनों शक्तियाँ मनुष्य के मनश्नि (मन), गवश्नि (वचन) और कुनश्नि (कर्म) पर प्रभाव डालती हैं। जब बाहुमन का प्राधान्य रहता है तो उसके मन, वचन और कर्म हुमत (शुभ विचार), हुख़्त (शुभ वचन) और हवरश्त (शुभ कर्म) में परिणत होते हैं अन्यथा दुश्मत (अशुभ विचार), दुज़ख़्त (अशुभ वचन) और दुज़्वरश्त (अशुभ कर्म) में बदल जाते हैं।"

एक दृष्टि से अङ्गिरामन्यु माया का रूप है। क्योंकि यह सिर्फ़ अजीवन ही पैदा करता है। पर अभावमात्र (Negation) होते हुए भी वह हमें सत्य भासता है। इस अज्ञानान्धकार के मिटते ही स्पेन्तामन्यु का तेज पूर्ण रूप से चमकने लगता है। जैसे प्रकाश के साथ छाया रहती है वैसे ही स्पेन्तामन्यु के साथ अङ्गिरामन्यु रहता है। जब तक हम छाया में रहते हैं तब तक हम प्रकाश को नहीं देख पाते। परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि छाया कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है।

यही प्राचीन ज़रथुस्तियों का भी सिद्धान्त और विश्वास था। पर समय के प्रभाव से और बुद्धि के फेर से महात्मा ज़रथुस्त के कुछ दिनों बाद यह सिद्धान्त बदल गया और स्पेन्तामन्यु ही अहुर मज़्द कहलाया।

अङ्गिरामन्यु उसका विरोधी शैतान ठहराया गया। इस प्रकार पार्सी धर्म में ख़ुदा और शैतान का सिद्धान्त चल पड़ा। ये दोनों शक्तियाँ स्वतन्त्र समझी गईं जो एक दूसरे के विरुद्ध कार्य करती हैं। 'वेन्दीदाद' मे इस ख़ुदा और शैतान के युद्ध का ख़ूब वर्णन किया गया है।

धीरे-धीरे पार्सियो में यह विश्वास पैदा हुआ कि पृथ्वी के शासको की तरह ख़ुदा और शैतान दोनों के अलग-अलग न्यायालय तथा कौंसिलें हैं। दोनों की कौंसिलो में छः छः सदस्य हैं। अहुर मज़्द अपनी कौंसिल का सभापति है और अङ्गिरामन्यु अपनी सभा का। ख़ुदा की कौंसिल के सदस्य हैं बाहुमन, अशावहिश्त, क्षात्रवीर्य, स्पेन्ता अर्मती, हौरवतात तथा अमरतात। शैतान की नारकीय सभा के सदस्य ६ देव हैं। वे हैं (१) अकुममन या कुमन, (२) इन्द्र, (३) सर्व, (४) नान्हत्य, (५) तम, (६) विष। इन नारकीय सदस्यों का कार्य जीवों का नाश और असत्य तथा अविद्या का प्रचार करना है।

७—जीवन और आचार

पिछले पृष्ठो में आप पढ़ चुके हैं कि पार्सी धर्मग्रन्थों में शुद्ध और अशुद्ध मन को वहमन (शुद्ध) और अकुममन (अशुद्ध) कहा गया है। मनुष्य का मन, वचन और कर्म वहमन और अकुममन से प्रभावित होता है। ज़रथुस्त ने अपने समस्त सिद्धान्तों को तीन शब्दों में प्रकट किया है। हुमत (सुमति), हुख़्त (सुवच) और हुवाष्त Hwasht (सुकर्म) मज़्दयस्नी आचारशास्त्र के ही तीन मुख्य अङ्ग हैं। ये तीनों वहमन या सुमन के व्यापार होते हैं। अकुममन का व्यापार भी तीन प्रकार का होता है, दुष्मत (अशुभ मन), दुज़ुख़्त (अशुभ वचन) और दुज़वश्त (अशुभ कर्म)। सारे शुभ कार्य बुद्धि या सुमन (वहमन) की

प्रेरणा से होते हैं और बुरे कार्यों का उत्तरदायित्व मूर्खता या अकुममन पर होता है। शुभ कार्य स्वर्ग की प्राप्ति कराते हैं और अशुभ कार्य नरक (दोज़ख़) की ओर ले जाते हैं। ज़रथुस्त का अनुयायी सदा यह ध्यान रखता है कि उसका जीवन ईश्वर की सृष्टि के हित में तथा यशप्राप्ति में व्यतीत होना चाहिए।

'हुमत' द्वारा ज़रथुस्ती धर्मावलम्बी अपने मन को मज़्द के ध्यान में लगाता है और अन्य मनुष्यों के साथ शान्ति, सुख तथा मेल से रहता है। वह मानव जगत् से प्रेम करता है और विपत्ति में लोगों की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझता है। शिक्षा द्वारा लोगों के मस्तिष्कों को उन्नत करता है। उनके साथ पवित्र वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ता है और अपनी शक्ति के अनुसार अपनी जाति तथा मनुष्य-समाज की उन्नति में संलग्न रहता है।

'हुख़्त' के द्वारा ज़रथुस्ती अपने वचन का पालन करता है, सभी व्यापारिक कार्यों में ईमानदारी का व्यवहार करता है। दूसरों को सुख पहुँचाने में, त्याग और प्रेमभाव बढ़ाने में अपने जीवन की सफलता समझता है।

'हुवश्त' के द्वारा निस्सहायों, अनाथों और निर्धनों की सहायता करना, कृषि-कर्म करना, अपने सहधर्मियों तथा अन्य लोगों की भलाई में अपना धन व्यय करना अपने जीवन का उद्देश्य समझता है।

इन्हीं कारणों से भारत के पार्सियों ने निस्स्वार्थ सेवाओं, परोपकारों एवं अपूर्व दानों द्वारा अद्भुत ख्याति प्राप्त की है। पार्सियों के लिए यह बड़े अभिमान और गौरव की बात है कि उनकी अधिक सम्पत्ति दूसरों की सहायता, सेवा तथा कष्ट-निवारण के कार्यों में व्यय होती है। प्रत्येक पार्सी-घर में आज तक इन तीनों सिद्धान्तों का भली भाँति पालन किया जाता है।

अवस्ता ग्रन्थ में कृषि कर्म की भरपूर प्रशंसा की गई है और उसी को समस्त व्यापारों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। पाठकों की जानकारी के लिए हम यहाँ अवस्ता के एक अंश को उद्धृत करते हैं—

"ज़रथुस्त ने प्रश्न किया कि इस पृथ्वी पर सबसे अधिक सुख का स्थान कहाँ है" "मज़्द ने उत्तर दिया", "सबसे अधिक सुख का दूसरा स्थान वह है जहाँ कि ईश्वर-विश्वासी ने घर बनाया हो और वह अपने बालबच्चों, पशु-पक्षियों सहित निवास करता हो तथा जहाँ इन सब पदार्थों की वृद्धि हो रही हो।" (वेन्डीडाड फ० ३,२)।

ज़रथुस्त के पुनः पूछने पर मज़्द ने कहा कि "संसार में सुख का तीसरा स्थान वह है जहाँ कि ईश्वर-विश्वासी ख़ूब अन्न, फल तथा घास पैदा करता हो, जहाँ सूखी भूमि को सींचा जाता हो और दलदलों को सुखाया जाता हो।" (वेन्डीडाड फ० ३, ४)।

ज़रथुस्त ने एक बार मज़्द से पूछा कि मज़्द धर्म को ख़ुराक कहाँ से प्राप्त होती है। मज़्द ने उत्तर दिया—"बार बार भूमि में अन्न बोने से"। (वेन्डीडाड फ० ३३)

आगे फिर ज़रथुस्त ने पूछा कि सबसे अधिक सुखी व्यक्ति कौन है। मज़्द ने उत्तर दिया—"जो व्यक्ति ईश्वर-विश्वासी कृषक की सहायता करता है वह संसार में सबसे ज़्यादा सुखी रहता है।" (वेन्डीडाड फ० ३४)

महात्मा ज़रथुस्त ने जीवन की पवित्रता और शरीर की स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया है। उनका विश्वास था कि शारीरिक स्वच्छता आत्मिक पवित्रता की पूर्वानुगामिनी है। शरीर की पवित्रता भी आत्मा की पवित्रता के समान ही आवश्यक है। अवस्ता में कहा गया है कि "पवित्रता सर्वोत्तम है। उसका अभ्यास जन्म से ही करना चाहिए"। (गाथा याचना XLVIII 5, वेन्डीडाड ५, २१)

शारीरिक स्वच्छता का स्वास्थ्य से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। अवस्ता में स्वास्थ्य को क़ायम रखने के लिए बहुत से आदेश दिये गये हैं और उपवास, तप द्वारा शरीर को क्षीण करना तथा अविवाहित रहने की प्रथाओं को निषिद्ध बतलाया गया है।

पवित्रता का यह स्रोत आज भी पार्सी समाज में दैनिक व्यापारों, धार्मिक रीतियों, पूजा-विधियों एवं मृतक संस्कार आदि में पूर्ववत् ही बहता हुआ दिखाई पड़ता है।

पवित्रता के ही कारण पार्सी धर्म में मुर्दे को ज़मीन में गाड़ने की विधि का खण्डन किया गया है क्योंकि उनका विश्वास है कि मुर्दा गाड़ने से पृथ्वी माता का कलेवर अपवित्र होता है।

मुर्दे को जलाने की विधि का भी खण्डन किया गया है क्योंकि इससे भी कीटाणु फैलते हैं और अग्नि की पवित्रता नष्ट होती है।

मुर्दे को पानी में बहाना भी मना है, क्योंकि इससे जल की पवित्रता नष्ट होती है इसलिए पार्सियों में 'ज़न्दावस्ता' की मुर्दे के सडाव का विशद विवेचन किया गया है। ज़रथुस्त ने लिखा है कि प्राणान्त के बाद फ़ौरन ही लाश सड़ने लगती है। आलङ्कारिक भाषा में सड़ाव एक भयङ्कर मक्खी के रूप में प्रकट होता है जिसमें सभी प्रकार के रोग व गन्दगियाँ मौजूद रहती हैं। यह मक्खी ज़िन्दा प्राणियों को अधिक हानि पहुँचाती है। ज़न्दावस्ता से एक अंश यहाँ दिया जाता है।

ज़रथुस्त ने अहुर (ईश्वर) से प्रश्न किया कि "ससार में सबसे दुःखद स्थान कहाँ है?" अहुर ने उत्तर दिया—"जहाँ मनुष्यों और कुत्तों की लाशें सड़ती हों।"

इस विषय पर बहुत से आदेश लिखे गये हैं कि लाश को अन्त्येष्टि तक किस स्थान में रक्खे, कहाँ अन्त्येष्टि की जावे, किस तरह लोग लाश उठाकर ले जावें, लाश उठानेवालों के वस्त्र किस प्रकार के हों।

अवस्ता में कहा गया है कि जीवन के पश्चात् पवित्रता द्वितीय श्रेष्ठ वस्तु है। जिस भूमि पर कोई मनुष्य व पशु मरता है उस भूमि को एक वर्ष तक कार्य में नहीं लाना चाहिए। उस भूमि का प्रयोग करनेवाले को मुर्दा गाड़ने का पाप लगता है और वह दण्ड का भागी होता है।

इतना ही नहीं, किन्तु इससे भी अधिक पवित्रता का विचार रक्खा गया है। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति किसी स्थान पर किसी मनुष्य

अथवा पशु की ज़रा सी भी हड्डी डाल दे तो उसे बड़ा पातक लगता है और वह दण्ड का भागी होता है। ज़रथुस्त के पूछने पर कि ऐसे व्यक्ति को क्या दण्ड मिलना चाहिए, मज़्द ने कहा—"हज़ार कोड़े"।

पवित्रता के नियमों का पालन और पति की आज्ञा का पालन स्त्रियों के उच्च गुण माने गये हैं। इन नियमों का उल्लङ्घन पाप समझा जाता है। पवित्रता का ध्यान प्रत्येक अवस्था में स्त्रियों को रखना होता है। यहाँ तक कि गर्भावस्था में भी बहुत ही पवित्रता का ध्यान रखना पड़ता है जिससे कि गर्भकाल या जननकाल में किसी प्रकार की ख़राबी न पैदा हो और कुटुम्बियों व सम्बन्धियों को कोई हानि न पहुँचे।

ज़रथुस्त ने एक बार मज़्द से पूछा—"यदि किसी स्त्री का समय के पूर्व गर्भपात हो जावे तो क्या करना चाहिए?" मज़्द ने उत्तर दिया—"उस स्त्री को पहले गौमेज़ (सं० गोमेध) अर्थात् गोमूत्र की तीन, छः या नौ बूँदें पिलानी चाहिएँ। फिर तीन दिन तक गाय, भेड़ या बकरी का गर्म दूध पान करावे। तदनन्तर गोमूत्र और जल से स्नान करावे तब वह पवित्र होगी।"

जीवन को पवित्रतम बनाने के उद्देश्य से ही ज़रथुस्ती पार्सी दिन में पाँच बार ईश-वन्दना करता है। पहली वन्दना (नमाज़) बामदाद कहलाती है जो प्रातःकाल से लेकर बारह बजे दोपहर तक किसी समय भी कर लेनी चाहिए। दूसरी प्रार्थना 'रपीथ्वन' कहलाती है। इसका समय दोपहर के बारह बजे से लेकर सायङ्काल के तीन बजे तक है। तीसरी नमाज़ 'ऊज़ीरन' कहलाती है। इसका समय तीन बजे शाम से सूर्यास्त तक है। चौथी प्रार्थना 'एवीश्रुथ्रिम' के नाम से प्रसिद्ध है। यह सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि के बारह बजे तक किसी समय की जा सकती है। पाँचवीं प्रार्थना 'हुशाङ्ग' है जो १२ बजे रात से लेकर प्रातः उषा-काल तक किसी समय कर लेनी चाहिए।

इस प्रकार स्वच्छता, पवित्रता एव स्वास्थ्य का पाठ पढाकर ज़रथुस्त लोगों के नैतिक सुधार की ओर बढ़े। इन्हीं पवित्रता के नियमों का

पालन कर आज भी पार्सी समाज महामारी, प्लेग आदि भयङ्कर व्याधियों से सुरक्षित रहते हैं।

बालकों की शिक्षा—पार्सियों का यह धार्मिक सिद्धान्त है कि पिता अपने बच्चों की आध्यात्मिक एवं सांसारिक दोनों प्रकार की शिक्षा का पूर्ण उत्तरदायी है। उनका पालन-पोषण इस ढंग से होना चाहिए कि वे जीवन-संग्राम में परिश्रमी, न्यायी, ईमानदार, शीलवान, सहिष्णु एवं वंश और जाति का मान बढ़ानेवाले हों। सहनशीलता का भाव पार्सियों में अधिक मात्रा में पाया जाता है, यद्यपि बालकों को प्रारम्भ से ही यह सिखलाया जाता है कि उनका ज़रथुस्ती धर्म सर्वश्रेष्ठ धर्म है और उसी का अधिक सम्मान करना चाहिए। मूर्ति-पूजा से घृणा करनी चाहिए। साथ ही उन्हें यह भी सिखलाया जाता है कि दूसरों के धार्मिक सिद्धान्तों के प्रति सहिष्णु हो और ख़ूब सोच-समझकर अपनी सम्मति प्रकट करें। ज़रथुस्त ने स्वयं एक स्थल पर कहा है कि "सब धर्मों के पवित्र लोगों की आत्माओं का हम आदर करते हैं।"

पार्सी साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट विदित होता है कि महात्मा ज़रथुस्त ने उन सब स्त्री-पुरुषों का सम्मान किया जो ईश्वर में दृढ़ विश्वास करते थे। यही भाव पार्सियों में अब तक विद्यमान है। इसी लिए हम देखते हैं कि पार्सी लोग धर्म, वर्ण, जाति आदि का भेदभाव न करते हुए सभी सामाजिक कार्यों में सबके साथ सहयोग करते हैं। उससे भी उच्च सहिष्णुता की मर्यादा हमें अवस्ता ग्रंथ के उस अंश में मिलती है जहाँ लिखा हुआ है कि "यदि कोई कुमारी विवाह से पूर्व गर्भवती हो जावे तो इस पापाचार की शर्म के कारण उस कुमारी को आत्महत्या न करनी चाहिए। क्योंकि आत्महत्या उससे भी बड़ा पाप होता है। इसलिए एक महापाप द्वारा किसी पाप की वृद्धि न करनी चाहिए, वरन् माता-पिता को उसकी तथा सन्तान की दोनों की रक्षा करनी चाहिये।"

विवाह का महत्त्व—पार्सियों में विवाह का महत्त्व केवल सामाजिक, नैतिक, मानसिक तथा शारीरिक उन्नति में ही नहीं वरन् धार्मिक एवं

पवित्र जीवन व्यतीत करने में परमावश्यक साधन समझने में है। पार्सी धर्म का यह सिद्धान्त है कि एक पार्सी अपनी धर्मपत्नी सहित गृहरूपी शान्त साम्राज्य का स्वामी है। जिस प्रकार कर्षण से भूमि को उपजाऊ बनाया जाता है उसी प्रकार दम्पति के प्रेम से मानव समाज उन्नत बनाया जाता है। पार्सी धर्म बतलाता है कि प्रत्येक मनुष्य को घर बनाकर स्त्री, बच्चों तथा पशुओं का पालन-पोषण करना चाहिए। उसे श्रमी, सहन-शील, स्वावलम्बी और पवित्र बनकर गृह की शान्ति का उत्पादक होना चाहिए।

समस्त सामाजिक कार्यों में स्त्री और पुरुष समान हैं। स्त्री को भी पुरुष के समान पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वर्तमान पार्सी समाज में भी हम इन नियमों का पालन इतना अधिक देखते हैं कि अन्य जातियों की भाँति पार्सियों में हमें स्त्रियों के दुर्व्यवहार या दुराचार का लेश भी नहीं मिलता। और साथ ही यह भी है कि पापाचरण के कारण स्त्री-परित्याग उचित भी नहीं माना जाता।

महात्मा ज़रथुस्त ने जहाँ मानव कल्याण के महान् सिद्धान्तों का उपदेश किया वहाँ छोटे-छोटे प्राणियों का भी सदा ध्यान रक्खा। उनके साथ दया का व्यवहार करने के लिए बहुत से आदेश किये। केवल आपत्तिकाल में यद्यपि पशुहिंसा को वैध बतलाया पर साथ ही उनको मारने के तरीक़े भी बहुत ही दयापूर्ण रक्खे। अनावश्यक हत्या और आखेट का निषेध किया। उनके दयाभाव का एक उद्धरण "ख़ुरदावस्ता" से नीचे दिया जाता है। पाठक स्वयं देख लेंगे कि उनका हृदय कितना कोमल और विशाल था।

"यदि मैंने कभी भी किसी लाभदायक पशु जैसे गाय, बैल, बकरी, भेड़, घोड़ा, मुर्ग़ आदि को पीटा हो, तङ्ग किया हो, रक्षा न की हो, भूखों मारा हो या किसी अन्य प्रकार से पीड़ा पहुँचाकर ईश्वर को दुःखी किया हो तो मुझे बड़ा पश्चात्ताप है।"

यह है महात्मा ज़रथुस्त की दया-भरी शिक्षा तथा अहिंसा का मूल मन्त्र। इस शिक्षा पर आचरण करनेवाले समाज के लिए पशु-रक्षा सम्बन्धी नियम पृथक् से बनाने की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है तो केवल ऐसे दृढ़ धार्मिक सिद्धान्तों के सुव्यवस्थित प्रचार की और पार्सियों की भाँति उनको हृदयङ्गम करने की। फिर मनुष्य तो चेतन शक्तिवाला है। उस शक्ति की रक्षा होनी चाहिए। कितने ही कठोर स्वभाववाला पुरुष क्यों न हो, उन मूक पशुओं की मूक वाणी से अवश्य ही दयार्द्र हो जावेगा।

८—बहिश्त (स्वर्ग) और दोज़ख़ (नरक)

"फरा सो झरा औ बरा सो बुताना" (तुलसी) अथवा "आया है सो जायगा राजा रङ्क फकीर" (कबीर) यह ध्रुव सत्य है। मरना तो अवश्य होता ही है पर आश्चर्य यह है कि मृत्यु की घड़ी कब आती है, किसी को पता नहीं। हम नेत्र बन्द करके जीवन की दौड़ दौड़ते चले जाते हैं, मार्ग में मृत्यु की खाई आ जाती है, हम धड़ाम से उसमें गिर जाते हैं। मृत्यु को सन्तों और भक्तों ने अपूर्व कौतूहल से देखा है। मृत्यु को लेकर एक ओर तो कुछ लोग वैराग्य का पाठ पढ़ाते हैं और दूसरी ओर कुछ लोग उसे 'साजन' के देश का निमन्त्रण समझकर ख़ुशी-ख़ुशी चलने को तैयार होते हैं—"कर ले सिंगार चतुर अलबेली साजन के घर जाना होगा"। (कबीर)

पार्सी धर्म के अनुसार जीवन दो प्रकार के माने गये हैं। पहला शारीरिक और दूसरा आध्यात्मिक। शारीरिक जीवन का अन्त है मृत्यु तथा आध्यात्मिक जीवन का अन्त है अमरत्व, यशःप्राप्ति और आनन्द।

पार्सियों का विश्वास है कि मृत व्यक्ति की आत्मा तीन दिन तक सूक्ष्म शरीर धारण कर पार्थिव सखा शरीर के साथ रहती है। चौथे दिन

यदि धर्मात्मा व्यक्ति की आत्मा है तो आकाशगामी होकर आनन्द के साथ सांसारिक सम्बन्धों को त्यागकर देवदूत 'सरोष' के साथ 'चिन्वर्त' के पुल को पार कर दक्षिणानिल के प्रान्त में विहार करती हुई स्वर्ग के द्वार पर पहुँचकर स्वर्ग के लेखक "महर दावर" को अपने सांसारिक कार्यों का हिसाब देकर स्वर्ग में प्रविष्ट करती है। स्वर्ग (बहिश्त) में सुख और शान्ति का उपभोग करती हुई 'फ़रशोगरद' (पुनर्जन्म) की प्रतीक्षा करती है।

दुष्ट आत्माओं की दशा इससे भिन्न होती है। वे दुष्ट आत्मायें 'चिन्वत' के पुल के नीचे से कठिनाई के साथ जाती हुई दोज़ख (नरक) के गड्ढे में जा गिरती हैं और बृहद् अधिवेशन (Great Gathering) के दिन तक नाना प्रकार की यातनायें भोगती हैं। पार्सियों के विश्वास के अनुकूल यह महा अधिवेशन उस दिन मनाया जावेगा जब कि संसार में अंगिरामान्युष की शक्ति का नाश होकर अहुरमज़्द की शक्तियों का पूर्ण साम्राज्य होगा।

पार्सी धर्म में बहिश्त या गरोठमान की कल्पना एक ऐसे ऊँचे मकान से की गई है जहाँ आत्मायें सुख से रहती हैं। दोज़ख एक नीचे मकान के सदृश है जहाँ कि रहनेवाली आत्माओं को हर प्रकार का कष्ट मिलता है।

इन दोनों मकानों के बीच में एक तीसरा मकान भी है जो 'हमेश-गेहान' के नाम से विख्यात है। इस स्थान पर ऐसे लोगों की आत्मायें रहती हैं जो न तो पूरे धर्मात्मा ही हैं और न निरे पापी किन्तु मध्यम श्रेणी के। अर्थात् जिनके जीवन में भलाई और बुराई दोनों चीज़ें रही हैं। इसी लिए इस घर में दुःख और सुख, रोशनी और अँधेरा आदि दोनों चीज़ें रहती हैं।

पुनर्जन्म और कर्मफल के सिद्धान्तों में पार्सियों का अटूट विश्वास है। पाठकों की जानकारी के लिए 'अवस्ता' ग्रन्थ से एक उपाख्यान उद्धृत करते हैं जो बहुत ही रोचक है तथा कर्म-सिद्धान्तों का ज़ोरदार शब्दों में प्रतिपादन करता है।

"एक बार ज़रथुस्त ने एक ऐसे आदमी का केवल दाहिना पैर बहिश्त में आनन्द करते हुए देखा जिसका शेष भाग दोज़ख़ में कठोर यातनायें भोग रहा था। ज़रथुस्त ने यह आश्चर्य देखकर अहुरमज़्द से उसका रहस्य पूछा। अहुरमज़्द ने उत्तर दिया कि यह पुरुष जिसका विचित्र हाल तुमने देखा है संसार में एक बड़ा राजा हुआ है। पर अपने जीवनकाल में बड़ा दुष्ट और क्रूर था। उसने सारे जीवन अपनी प्रजा को दुःख दिया। एक दिन जब वह शिकार खेलने जा रहा था उसने रास्ते में पेड़ से बँधी हुई एक बकरी देखी। बकरी के सामने चारा था पर रस्सी, जिससे वह बँधी थी, इतनी छोटी थी कि वह प्रयत्न करने पर भी चारे तक न पहुँचती थी। राजा को यह देखकर बकरी पर कुछ तरस आ गया और उसने घोड़े से उतरकर अपने दाहिने पैर से चारा बकरी के पास खिसका दिया। अतएव उसके दाहिने पैर को स्वर्ग मिला और शेष शरीर नरक में पड़ा है।"

यद्यपि यह एक कथानक ही है पर इससे अनुपम शिक्षा प्राप्त होती है। पारसियों के जीवन इसी प्रकार के कथानकों के साँचे में ढाले जाते हैं। इसी प्रकार की कथाओं से प्रभावित होकर पार्सी बाल्यकाल से ही विचारों में सहिष्णु, व्यवहार में पवित्र, शासन-कार्यों में न्यायी व चतुर, पञ्चतत्त्वों को पवित्र बनाने में सावधान, बुराई त्यागने में उद्यत, प्राणियों की रक्षा में तत्पर, कृषि-कर्म में श्रमी, विद्याध्ययन में परिश्रमी, भोगों में संयमी, मित्रों व कुटुम्बियों में ऐक्य-स्थापन करने में प्रयत्नशील, जीवन-मार्ग में गुणों व दोषों में भेद करने में समर्थ तथा पाप का प्रायश्चित्त करने में उद्यत रहता है।

पार्सी साहित्य में स्वर्ग को 'गरोठमान' कहा गया है जिसका अर्थ है भजनाश्रम, क्योंकि पार्सियों का विश्वास है कि स्वर्ग में देवदूत भजन गाते रहते और मंत्र पाठ करते रहते हैं। अहुरमज़्द भी वहीं वास करते हैं। आजकल स्वर्ग के लिए प्रचलित नाम बहिश्त है जो 'आहुबहिश्त' का संक्षिप्त रूप है।

नरक का नाम 'दरूज़मान' अर्थात् नाशघर है। देवधर्म मानने-वालों की आत्मायें नरक वास करती हैं। इसके लिए प्रचलित नाम दोज़ख़ है।

पार्सियों का ऐसा विश्वास है कि अन्तिम न्याय के दिन (Judgment Day) सभी मृतात्मायें पुनः जीवन धारण करेंगी। उन्हें जगाने का काम देवदूत 'ओश' करेंगे। यही देवदूत भविष्य में संसार में पैग़म्बर होकर जन्म लेंगे।

६—सृष्टि और प्रलय

पार्सी धर्मग्रन्थों में विश्व-सृष्टि विषय का अधिक विवेचन नहीं किया गया फिर भी गाथाओं में यत्र तत्र कुछ विचार प्राप्त होते हैं। पाठकों की जानकारी के लिए हम प्रथम शासन से एक अंश उद्धृत करते हैं।

"मिहचर्ख़ (सृष्टि का आरम्भ) के आदि में विश्वसृष्टि का कार्य नवीन प्रकार से आरम्भ होता है। पर रूप, क्रिया तथा ज्ञान जो 'मिहचर्ख़' के आदि में प्रकट होते हैं सर्वथा वैसे ही होते हैं जो पूर्व के मिहचर्ख़ों में प्रकट हुए हैं।" प्रत्येक भावी मिहचर्ख़ आदि से अन्त तक पूर्व के मिहचर्ख़ों के सदृश होता है। सृष्टि-रचना का ठीक यही सिद्धान्त ऋग्वेद के इस मन्त्र में प्रकट किया गया है—"ऋतञ्च सत्यञ्चा-भीद्धा तपसोऽध्यजायत, ततो रात्रिरजायत, ततः समुद्रोऽर्णवः समुद्रादर्णवा-दाधिसंवत्सरोऽजायत्। अहोरात्राणि विदधत् विश्वस्य मिषतो वशी, सूर्या-चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत। दिवञ्च पृथ्वीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः।"

—ऋ० मं० १० सू० १९०-१९१

अर्थात् ईश्वर ने अपनी महान् शक्ति व पराक्रम से वेद व प्रकृति को उत्पन्न किया। उस समय दिव्य रात्रि थी। उसके पश्चात् आकाश

व अन्तरिक्ष की स्थापना हुई, तत्पश्चात् सन्धिकाल बना। फिर संसार को वश में करनेवाले परमात्मा ने दैनिक गति की उत्पत्ति की जिससे रात-दिन होते हैं, फिर सूर्य-चन्द्र, पृथ्वी तथा आकाश के नक्षत्रों को उनके मध्यवर्ती अन्तरिक्ष सहित उसी प्रकार रचा जिस प्रकार कि उसने पूर्व-कल्प में रचा है।

पार्सियों ने भी भारतीय आर्य धर्म (वर्तमान हिन्दू) की तरह संसार को सात खण्डों में विभाजित किया है जिन्हें वे हफ़्त अमशास्पन (सात सितारा) कहते हैं। यहाँ एक प्रश्न सहज में उठता है कि सृष्टि रचने में ईश्वर का क्या प्रयोजन था? पार्सी धर्मग्रन्थों में इसका उत्तर यह दिया गया है कि "अहुरमज़्द की इच्छा थी कि उसकी शक्ति, परोपकार-वृत्ति और ज्ञान मानव-समाज के कल्याण में लगे तथा उन्हें परलोक में भेजने के योग्य बनावे।"

पार्सी लोग भी यही विश्वास करते हैं कि इस सृष्टि का निमित्त कारण (Efficient cause) अहुर ही है। इसी लिए उसे पार्सी साहित्य में 'दादर' (स्रष्टा) कहा गया है। उसी ने हम सब को बना-कर भिन्न-भिन्न आकृतियाँ प्रदान की हैं।

ज़रथुस्ती साहित्य में हमें सृष्टि-रचना का क्रमिक विवेचन नहीं मिलता। उत्तरकालीन अवस्ता साहित्य में इस विषय पर कुछ सङ्केत रूप से उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार पहले अप्रत्यक्ष या आध्यात्मिक सृष्टि (वैदिक ऋतं) की रचना हुई और फिर प्रत्यक्ष, भौतिक या स्थूल जगत् की (वैदिक सत्यं)।

एक बार ज़रथुस्त ने अहुर से पूछा कि यह शरीर जो मरने के बाद भौतिक तत्त्वों में मिल जाता है पुनः कहाँ से आता है और उसका पुनर्जन्म कहाँ से होता है। अहुर ने उत्तर दिया—"जब मैंने आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वृक्ष, फल, फूल, अन्न, जल, अग्नि, प्रलय आदि पदार्थों की रचना की तो मेरे लिए जीव का पुनर्जन्म करना क्या कठिन है?" अर्थात् प्रलय और पुनर्जन्म ईश्वर की अनन्त शक्ति से होते हैं।

वेन्डीडाड ग्रन्थ में एक स्थल पर लिखा है कि "खाँ अज़तने बतने रुन्दह अस्त" अर्थात् जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जानेवाला है। उसी ग्रन्थ में एक दूसरे स्थल पर यह कहा है कि "शतर वा गौहरेस्त स्याम क व कामूस व जुम्बानन्द व ओरा मर्दुम"...अर्थात् जीवात्मा सारभूत वस्तु है। वह निरवयव है। सब प्राणी उसीसे अभिप्रेत हैं। वह शरीर का प्रयत्नकर्त्ता है। शरीर में जीवात्मा व्याप्त नहीं होता और न शरीर से संयुक्त ही है। जीवात्मा एक दीपक की बत्ती के समान है और शरीर को प्रकाशित करता है पर है वह शरीर से पृथक्।

वेन्डीडाड में लिखा है कि अहुर मज़्द ने कहा कि 'ता चूँ कुनद चुना अंजाम यावद' अर्थात् जिसने जैसा किया उसका वैसा फल प्राप्त करे और राज्य प्राप्त करने पर भी जैसे कर्म किये वैसा फल भोगे। एक बार ज़रथुस्त के पूछने पर मज़्द ने उत्तर दिया—"शोक और दुःख बुरे कर्मों का फल है जो उसने पूर्व जन्म में किये थे और यह साम्राज्य और धन-वैभव उन शुभ कर्मों का, जो उसने पिछले जन्म में किये, परिणाम है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण पार्सी धर्मग्रन्थों में प्राप्त होते हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि उनका पुनर्जन्म में दृढ़ विश्वास है।

——

१०—धार्मिक संस्कार

भारतीय आर्यों (हिन्दू) की भाँति ज़रथुस्ती पार्सियों में भी मनुष्य के १६ संस्कार प्रचलित हैं पर हिन्दुओं और पार्सियों में समय और विधियों में अन्तर अवश्य है। जैसे भारतीय पार्सियों में प्रायः यह प्रथा है कि बच्चा ज़नाने अस्पतालों में जहाँ प्रसूतिगृह आदि की सुविधा होती है, पैदा कराया जाता है और चालीस दिन तक वहाँ बच्चा और उसकी माता (ज़च्चा) को रखते हैं। इसी बीच में उसका क्षौर कर्म तथा कर्णवेध
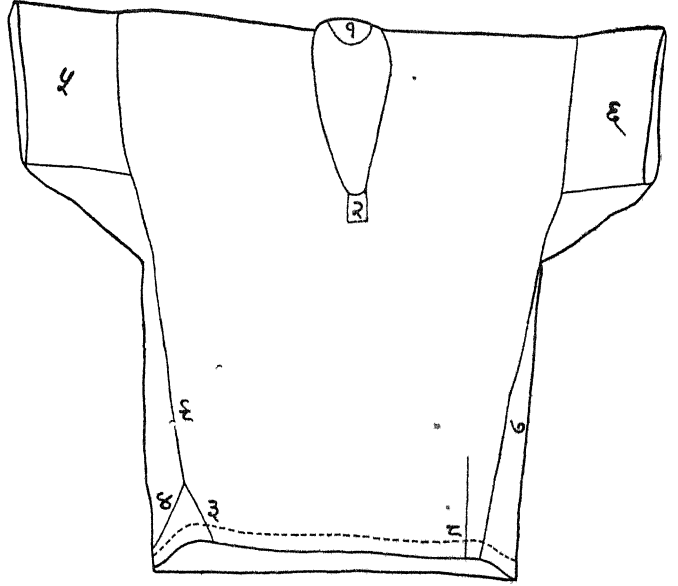
मलमल के ९ छोटे बड़े टुकड़ों से बना हुआ सुदरेह

दोनों संस्कार करा दिये जाते हैं। कर्णवेध लड़की का ही होता है, लड़के का नहीं होता। चालीस दिन के बाद जब बच्चा अपनी माँ के साथ घर आता है तो उसका नामकरण भी कर दिया जाता है।

पार्सियों में जितना महत्त्व कुश्ति (यज्ञोपवीत) संस्कार को दिया जाता है उतना उससे पूर्व के किसी संस्कार को नहीं दिया जाता। पर हिन्दुओं की भाँति पार्सियों में कोई विशेष ऋतु इसके लिए निश्चित नहीं है और न वर्णों के अनुकूल भिन्न-भिन्न वर्णों के लिए पृथक्-पृथक् समय ही बताया गया है। किसी ऋतु में भी लड़का या लड़की का कुश्ति संस्कार किया जा सकता है।

सातवें वर्ष से लेकर १५वें वर्ष तक की आयु तक अवश्य ही कुश्ति हो जाना चाहिए। कुश्ति लड़का और लड़की दोनों का समान रूप से होता है। पार्सी लोग कुश्ति कमर में बाँधते हैं। पहले एक ढीला छोटी बाँह का कुर्त्ता, जिसे 'सूद्रे' कहते हैं, शरीर से लगा हुआ पहना जाता है। यह 'सूद्रे' 'मलमल' कपड़े का बनता है और नौ टुकड़े जोड़कर बनाया जाता है। इस 'सूद्रे' वस्त्र पर ही कुश्ति बाँधा जाता है। कुश्ति श्वेत ऊन की तीन लड़ियों का बनता है।

कुश्ति दस्तूरों (पार्सी पुरोहित) के घरों की स्त्रियाँ ही बनाया करती हैं, पुरुष नहीं बनाते।

जिस दिन बालक या बालिका का कुश्ति संस्कार होता है उस दिन दोपहर तक उसे व्रत रखना होता है। प्रातःकाल थोड़ा सा गो मूत्र पीने को दिया जाता है। दोपहर तक संस्कार समाप्त हो जाता है।

जिस प्रकार आर्य लोग (हिन्दू) आयु, बल और तेज के लिए तीन लड़ियों का परम पवित्र यज्ञोपवीत अपने हृदय पर धारण करते हैं, उसी प्रकार ज़रथुस्ती लोग हुमत (शुभ विचार), हुख्त (शुभ वचन) और हुवरश्त (शुभ कर्म) के स्मरणार्थ तथा ज़रथुस्ती दीन में आस्था प्रकट करने के लिए पाद्याब कुश्ति को कमर में बाँधते हैं। कमर में बाँधने का प्रयोजन यह है कि वह व्यक्ति इन चीज़ों के लिए सदैव कमर कसे रहता है।

बालक या बालिका के दैनिक जीवन और पवित्राचार से इस कुष्टि का घना सम्बन्ध है। सोते, जागते, शौच जाते समय, लघुशङ्का करने से पूर्व, स्नान या भोजन के पूर्व और पश्चात् कुष्टि की ग्रन्थि को खोलना और फिर बाँधना होता है।

कुष्टि खोलते समय मन्त्रोच्चारण किया जाता है। बाँधते समय भी मन्त्र का उच्चारण करना आवश्यक है।

जिस मन्त्र को पढ़कर कुष्टि की ग्रन्थि खोली जाती है उसका हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जाता है :

"हे मज़्द, तू दुष्ट जनों और उनके कपट-व्यवहार से मेरी रक्षा करनेवाला है। तूने संसार को पवित्राचार प्रदान किया है। धर्म-भाव से अपना जीवन व्यतीत करने की तू शक्ति प्रदान कर। तेरी सहायता और अवस्ता का पवित्र कलाम मेरे शत्रुओं को मारनेवाले हों। दोनो लोकों में मेरा भला हो। इस रीति से रहनुमाई करके तू मुझे इस संसार मे कोई गुरु बता। ओ मज़्द, जिस भक्त को तू चाहता है (प्यार करता है) उसकी बहमन द्वारा सरोष से मित्रता करा। ओ हुरमुज़, ओ स्पेन्तामंद, दुःख देनेवाले से बचा। सारी बुरी शक्तियाँ उत्तर दिशा में दफ़न हो जावें जिससे कि विश्व मे अशोई को हानि न पहुँचे। मैं तेरी आज्ञा का पालन करनेवाला हूँ और संसार की वृद्धि चाहनेवाला हूँ।"

कुष्टि बाँधते समय जो मन्त्र पढ़ा जाता है उसका अर्थ नीचे दिया जाता है :—

"दादार अहुर मज़्द तू विश्व का स्वामी है। तू अपवित्र हेरेमन (अंग्रमान्यूष) को मारनेवाला है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तू अंगिरामान्यूष, देवानदेव, द्रुज (दुर्गुण, कुविचार, अस्वच्छता, बुराई आदि) से मेरी रक्षा कर। ज़रथुस्ती से द्रुज (दुष्ट व्यक्ति), जादूगर, परी वग़ैरह (भूत, प्रेत) दूर रहे। दुष्ट राजा दूर हो, मेरा शत्रु दूर हो।

"मैं अपने सब पापों के लिए पश्चात्ताप करता हूँ और लज्जित होता हूँ। यदि कोई बुरा विचार मेरे मन में कभी आया हो, यदि बुरा वचन

मैंने कभी बोला हो और यदि बुरा कर्म मैंने कभी किया हो तो उस बुरे विचार, बुरे वचन और बुरे काम के लिए मुझे पश्चात्ताप है। दुनिया में मेरा विचार, मेरा वचन और मेरा काम ऐसा रहे जिससे कि अहुर-मज़्द मुझसे ख़ुश रहे। अंगिरामान्यूष को धिक्कार है। मुझे पवित्राचार प्रिय है।"

कुष्टि बाँधने के पश्चात् जो मन्त्र पढ़ा जाता है, उसका अर्थ यह है :—

"ओ मज़्द, मेरी सहायता कर। मैं एक ख़ुदा का माननेवाला हूँ और पवित्र ज़रथुस्ती धर्म का पालन करनेवाला हूँ। मैं पवित्र मन, पवित्र वचन और पवित्र कर्म की प्रशंसा करता हूँ। मैं पवित्र मज़्द यस्नी धर्म का प्रशंसक हूँ जो कि लड़ाई-झगड़ों से दूर हटानेवाला है, जो सशस्त्र को निःशस्त्र कर देता है, जो भक्ति की प्रेरणा करता है, जो पवित्र है; जो समस्त वर्तमान अथवा भावी मत-मतान्तरों में सर्वोत्तम है। अहुरमज़्दी ज़रथुस्ती धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ, महान् तथा कल्याणकारी है। मेरा यह विश्वास है कि सारे सत् पदार्थ अहुर मज़्द से ही उत्पन्न हुए हैं।"

कुष्टि को खोलने के बाद हाथ, पैर, मुँह आदि शरीर के अङ्गों को धोकर ही उसे बाँधने का विधान है इसी लिए तो कुष्टि को 'पाद्याब कुष्टि' कहते हैं। पाद्याब का अर्थ है (पाद + आब) पानी से पैर आदि धोना।

विवाह—कुष्टि संस्कार के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण संस्कार पार्सी समाज में विवाह माना जाता है। विवाह प्रायः लड़के का २४ वर्ष की आयु के उपरान्त और लड़की का १६ वर्ष की आयु के उपरान्त ही किया जाता है। पार्सियों के अन्य संस्कारों की भाँति विवाह संस्कार पर भी हिन्दू-प्रभाव काफ़ी पड़ा है। गुजरात और बम्बई के पार्सी लोग हिन्दू पंडितों से ही लड़के या लड़की के विवाह की लग्न आदि निश्चित कराते हैं।

विवाह के अवसर पर शमी (गुजराती—समड़ी) वृक्ष की डाल और मण्डप गाड़ने की प्रथा हिन्दुओं के समान पार्सियों में भी प्रचलित है।

विवाह की अन्य अनेकों क्रियाएँ भी समान ही हैं। वर-वधू दोनों भाषाओं यानी ज़न्द भाषा तथा संस्कृत भाषा में विवाह के समय की प्रतिज्ञा करते हैं।

विवाह के पश्चात् सब लोग मिलकर वर-वधू को संस्कृत में निम्न-लिखित आशीर्वाद देते हैं।

देयाद् वो दाता सर्वज्ञानि स्वामिप्रभुताम् पुत्रः संततिम् विपुलाम् विभूतिम् मनुष्यम् प्रियतमतनोरूपम् प्रवर्तितम् दीर्घं च जीवितस्थित्यम् संवत्सरेषु नव दश शतेषु संवत् (   ) वर्षे——रोजे——मासे ——नगरे——प्राकृत यज़्दगर्द शहरीयार व गंभीर आशी वा धीराभिः न सते सते जर नसापुरी सुवर्णाभिः पूर्वाचारमिसज्ञी अतीता गोबरभि उत्तमाना हंजम्मे संप्राप्ते उपरि अन्यायं यत् मज़्द यस्निया दीनीया परणीत काल तृतीया कन्यादानं अयं कुमारी—नामनीयं नारी पुरन्दरी—नामनी युष्माभिः नीर हजानवय समालोचन एकमतेन सत्येन मनसा तिसृभिः वाणिभिः आत्मना पुण्यवर्धये आजना शीमं वर्धता युष्माभिश्च आजं शीमं सत्येन मनसा सत्येन मनसा प्रतिकर्ता उभयोरपि कल्याण वर्धे भूयात् वर्धे भूयात्।

May the creator Hormuzad bestow upon you very many male children and grand-children, abundant income, sincere, genuine friendship, the body with healthy countinance, long life of durability of a hundred and fifty years. In the year such and such of the Emperor Yazd Zaud of the Sassanian Dynasty King of the auspicious Iranian cities in the month—such and such or the day such and such in the city of—this gathering has been collected for witnessing the giving of this bride in nuptial. This virgin—this woman—according to the law & custom of the
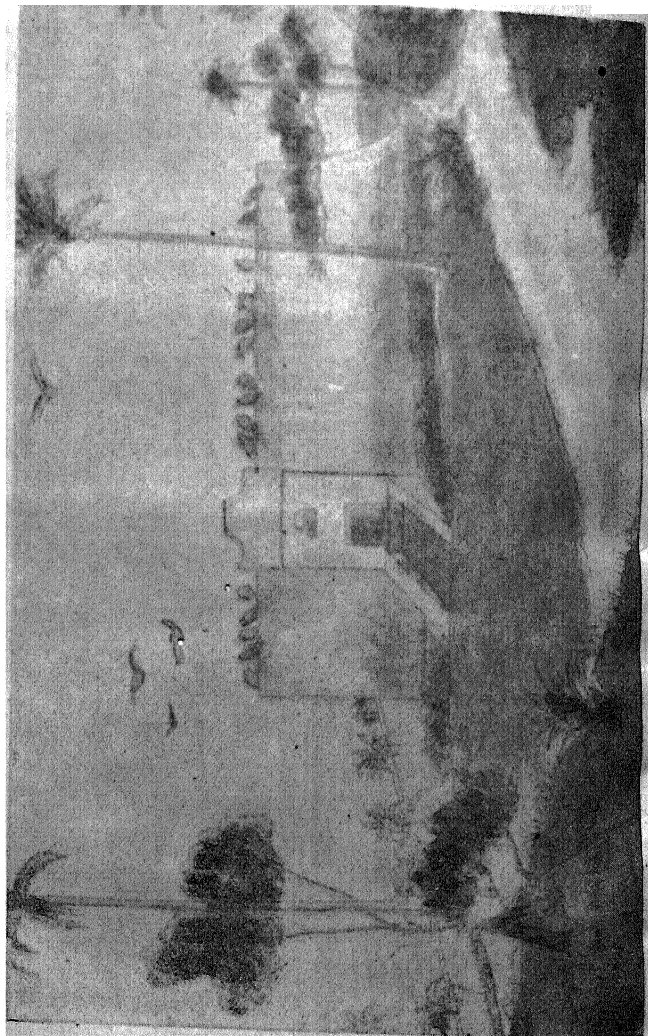
Mazd Yasinian Religion. Have you (here) are agreed to pay in consideration of this match two thousand genuine white silver Derhans and two real gold Dinars of Nisharpur city,

पुरुष साधारणतः एक ही विवाह करता है। हाँ, पत्नी मर जाने पर उसे दूसरा विवाह करने का अधिकार प्राप्त है। पर पहली पत्नी जीवित रहते हुए पति दूसरी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता।

स्त्री भी एक ही पति से विवाह कर सकती है, पति को परित्याग करने का अधिकार पार्सी समाज नहीं देता। हाँ, पति के मरने के उपरान्त यदि स्त्री चाहे तो विधवा-विवाह दूसरे पुरुष के साथ कर सकती है।

स्वजाति से बाहर तथा विधर्मियों के साथ विवाह करने की प्रथा भारत के पार्सियों में नहीं है। जो पार्सी पुरुष या स्त्री विधर्मियों के साथ विवाह कर लेते हैं उन्हें समाज में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। पार्सी समाज इतना अपरिवर्तनवादी है कि विधर्मी लड़की या लड़के को अपने समाज में मिलाने को किसी भी दशा में तैयार नहीं है। हाँ, अपने समाज से बाहर निकालने की प्रथा बराबर जारी है।

पार्सी विधि से विवाह हो जाने के पश्चात् भी सरकार में विवाह की रजिस्ट्री कराने की प्रथा चल रही है।

अन्त्येष्टि—अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि या 'नसो' है। पार्सियों में यह प्रथा है कि लाश को दिन में ही सूर्यास्त से पूर्व श्मशान-भूमि में—जिसे गुजराती में 'दुखमा', अवस्ता में दुख्म और हिन्दी में शान्ति-भवन (Tower of Silence) कहते हैं—ले जाते हैं। ये शान्ति भवन प्रायः बस्ती के बाहर बने होते हैं। पार्सी लोग न तो मुर्दे को अग्नि में जलाते हैं, न पानी में बहाते हैं और न भूमि में गाड़ते हैं। क्योंकि ऐसा करने से अग्नि, जल अथवा भूमि की पवित्रता नष्ट होती है। इसलिए शान्ति-भवन में जिसका निर्माण वैज्ञानिक ढंग

से होता है, मुर्दे को ले जाकर रख दिया जाता है। वहाँ मुर्दे को शिकारी चिड़ियाँ खा जाती हैं। अवशिष्ट हड्डियाँ शान्ति-भवन के अन्धे कुओं मे अपने आप गिर जाती हैं और वर्षा तथा धूप के प्रभाव से धूल बन जाती हैं।

भारतवर्ष में सबसे बड़ा शान्ति—भवन सूरत में है।

पारसी धर्मग्रन्थों में मृत आत्मा के लिए रोना मना है पर रोने की प्रथा अन्य लोगों की भाँति पारसियों भी पाई जाती है।

पारसियों का ऐसा विश्वास है कि मृत व्यक्ति की आत्मा तीन दिन तक उसी स्थान पर अपने सूक्ष्म शरीर के साथ चक्कर काटती रहती है। इसी लिए तीन दिन तक पारसी लोग मृत आत्मा की शान्ति के लिए 'फरोदर' की क्रिया के साथ साथ 'रस्न' और आस्ताद देवदूतों की आराधना करते हैं जिससे कि ये देवदूत मृत आत्मा की सहायता करें। फरोदर की क्रिया तो बहुत दिनों तक जारी रहती है। यह क्रिया नित्य प्रातःकाल पारसी पुरोहित आकर करता है। घर की अग्नि के सम्मुख दूध, फल, फूल आदि वस्तुएँ रखकर मृत पुरुष के नाम से अवस्ता के मंत्र पढ़े जाते हैं। फरोदर की क्रिया के अतिरिक्त तीन दिन तक 'सरोष' क्रिया भी होती है।

सरोष देवदूत जन्म से मृत्यु पर्यन्त व्यक्ति की रक्षा करते हैं और मृत्यु के बाद स्वर्गीय लेखक महरदावर के पास तक आत्मा को पहुँचा देते हैं, जहाँ उसका न्याय किया जाता है।

——

११—पर्व और उत्सव (जश्न)

भारत के पारसियों में तीन प्रकार के धार्मिक उत्सव मनाये जाते हैं। कुछ पर्व या उत्सव ऐसे हैं जिन्हें प्रत्येक पारसी कुटुम्ब स्वयं

ही मनाता है जैसे आतश कारोज । कुछ पर्व ऐसे हैं जो दस्तूरों (पार्सी-पुरोहितों) की सहायता से मनाये जाते हैं जैसे नया दिन या .खुरदाद साल वगैरः तथा कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें केवल दस्तूर ही मनाते हैं जैसे नवरोज़।

पार्सियों में अधिक उत्सव नहीं मनाये जाते, पर जितने भी पर्व प्रचलित हैं उन्हें विधिपूर्वक मनाया जाता है । उनके मुख्य जश्न ये हैं:—

१. नया दिन—(New Year's day) फरवर्दीन (साल का प्रथम मास) माह का पहला दिन (हुर मु.ज्द) है। यह महात्मा ज़रथुस्त का जन्म-दिवस है अतः अत्यधिक प्रसन्नता का दिवस है। इस दिन सभी पार्सी नर-नारी और बालक प्रातःकाल ही स्नान आदि नैत्यिक कार्यों से निवृत्त होकर नये वस्त्र धारण करते हैं और गत वर्ष के कार्यों पर विचार करते हुए अपनी त्रुटियों के लिए पश्चात्ताप करते हैं। फिर अग्नि मन्दिर में जाते हैं ।

अग्नि-मन्दिर में नगर के सभी पार्सी बाल वृद्ध एकत्रित होते हैं। फल-फूल, मेवा, चन्दन आदि पदार्थ अग्नि की भेंट के लिए ले जाते हैं। मन्दिर में जाकर सब मिलकर म.ज्द प्रार्थना करते हैं। दस्तूर द्वारा अवस्ता का पाठ होता है । उसे सब ध्यान से सुनते हैं। अपनी-अपनी भेट की वस्तुयें दस्तूर के अर्पण करते हैं। दस्तूरजी उन वस्तुओं को अग्नि के सम्मुख थोड़ी देर के लिए रख देते हैं और भक्त को लौटा देते हैं। भक्त उसे सब लोगों में प्रसाद रूप से वितरण करता है ।

अन्त में दोनों हाथ जोड़कर (हमाज़ोर) सभी लोग परस्पर मिलते हैं और नये वर्ष की बधाई देते हैं।

इस दिन पार्सी घरों में पूड़ी, पकवान, मिठाई, हलवा आदि विशेष भोजन बनता है जिसे सब कुटुम्ब के लोग एक साथ बैठकर प्रेमपूर्वक खाते हैं।

२. .खुरदाद साल—नये वर्ष का छठा दिन—फरवर्दीन मास के .खुरदाद दिवस को यह पवित्र पर्व मनाया जाता है। पार्सियों का ऐसा विश्वास है कि इसी दिन दादर हुरमुज़ (ईश्वर) ने सृष्टि की रचना की थी।

दादर हुरमुज़ ने कहा "ऐ ज़रथुस्त! मैंने ख़ुरदाद के दिन संसार की रचना की। यह वह दिन है जिस दिन सारे विश्व के प्राणी बनाये गये। इसी दिन गयो वर्ष (आदम) का संसार में वजूद (अस्तित्व) हुआ।"

यह दिन भी नये दिन की भाँति पार्सियों के लिए बड़ी प्रसन्नता का होता है। इसे भी बड़ी सज-धज के साथ घरों एवं अग्नि-मन्दिरों सभी स्थानों में मनाया जाता है।

३—आवां जश्न (जल-महोत्सव)—प्रतिवर्ष आवां मास (साल का आठवाँ मास) के आवाँ दिवस (दसवें दिन) को जल के द्वारा अपने इष्टदेव (मज़्द) की पूजा करते हैं।

इस दिन प्रातःकाल से सायङ्काल तक लोग समुद्र, नदी, झील, तालाब, कूप आदि (जो भी निकट हो) के समीप जल-महोत्सव मनाते हैं। यदि दुर्भाग्य से कोई जलाशय पास न हो तो जल से भरा हुआ घड़ा या कोई बर्तन पास रखकर ही उत्सव मना लिया जाता है।

जलाशय के पास पहुँचकर बाल-वृद्ध सभी बड़े उत्साह और उमङ्ग से हाथ मुँह धोते और कुष्टि बदलते हैं। फिर फल, फूल, नारियल, मिश्री आदि हाथ में लेकर जल को अर्पण करते हैं और अवस्ता के मंत्रों का उच्चारण करते हुए जल की पूजा समाप्त करते हैं।

पूजन समाप्त करने के बाद लोग जलाशय से छोटे-छोटे पात्रों में पानी भरकर अपने-अपने घरों को ले जाते हैं और अपने-अपने घरों की सीढ़ियों, दरवाज़ों तथा किवाड़ आदि पर सर्वत्र उस जल को छिड़कते हैं। ऐसा करने में वे सौभाग्य का आगमन मानते हैं।

पार्सी लोग आवां मास को इतना पवित्र समझते हैं कि उनका ऐसा विश्वास है कि यदि कोई व्यक्ति चालीस दिन तक बराबर एक स्थान पर बैठकर एक ही निश्चित समय में नित्य श्रद्धा और भक्ति के साथ 'आवांयज़्द' (जलदेव) की प्रार्थना करे तो वह प्रार्थना जिसे 'आवांयश्त'

कहते हैं, अर्द्रशुस्त (जलदेवता) के द्वारा अवश्य ही अहुरमज़्द या आवांयज़्द तक पहुँच जाती है।

४. आतश का दिन (आदर रोज़)—आदर माह (९वाँ माह) के आदर दिवस (९वें दिन) को मनाया जाता है। पार्सियों का ऐसा विश्वास है कि इसी दिन संसार की पवित्र अग्नि पैदा हुई थी। यह पर्व दो दिन तक मनाया जाता है। पहले दिन तो घर में ही मनाने का विधान है। इस दिन घर की विशेष सफ़ाई की जाती है। घर की अग्नि के सामने घी का दीपक जलाया जाता है। चन्दन व अगर आदि अग्नि में चढ़ाया जाता है। घर के सब लोग नहा धोकर नये वस्त्र धारण कर अग्नि के सामने बैठकर ईश-प्रार्थना करते हैं।

दूसरे दिन अग्नि-मन्दिर में नगर के सब पार्सी इकट्ठे होकर अन्य पर्वों की भाँति इसे भी मनाते हैं।

५. जरथुस्त दीसा (ज़रथुस्त का निधन दिवस)—देह मास के ख़ुरशेद दिन को यह शोक-दिवस मनाया जाता है। इस दिन सभी पार्सी अपने पैग़म्बर महात्मा ज़रथुस्त के जीवन तथा कार्यों पर विचार करते और उनकी मृत्यु का शोक मनाते हैं। मन्दिर में प्रातःकाल जाकर ईश-प्रार्थना करते और प्रसाद लेकर घर वापिस आते हैं।

६. मुक्तात (अवस्ता फरवर्दियान) अर्थात् श्राद्ध-दिवस—हिन्दुओं के कनागतों की तरह पार्सी लोग प्रति वर्ष साल के अन्तिम पाँच दिन, गाथा के पाँच दिन और नये वर्ष के सात दिन लेकर १७ दिन तक समस्त मृत आत्माओं के सम्मानार्थ मुक्तात रोज़ मनाते हैं।

इन दिनों में घर के किसी बड़े कमरे में एक कृत्रिम बाग़ लगाया जाता है। बाग़ के बीच में एक पत्थर पर दो काँच के गुलदान रक्खे जाते हैं जिनमें सुन्दर गुलदस्ते बनाकर रक्खे जाते हैं। वहीं एक बड़ासा उथला थाल के सदृश पीतल, लोहे या चाँदी आदि का पात्र जिसे 'आरणी' कहते हैं रक्खा जाता है।

घर में जो कुछ नित्य भोजन बनता है उसका कुछ अंश लाकर उस आरणी में रख दिया जाता है। थोड़ी देर पीछे वह खाना उठा लिया जाता है और बच्चों को खाने को दे दिया जाता है। फिर ब्राह्मण-भोजन कराने के उपरान्त घर का स्वामी भोजन करता है।

पार्सी लोग ऐसा मानते हैं कि मृत पुरुषों की आत्मायें उन दिनों पृथ्वी पर दस दिन के लिए आती हैं और संसार के लोगों से सम्मान की इच्छा करती हैं। इसी लिए उनके सम्मानार्थ ये दिन मनाये जाते हैं।

७. नवरोज़ या जमशेद नवेराज़—मेहर मास के रश्नरोज़ को या अँगरेज़ी कलेण्डर के हिसाब से २१ मार्च को यह पर्व प्रतिवर्ष पार्सी समाज में प्रसन्नतापूर्वक मनाया जाता है। इस दिन सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है और दिन का बढ़ना प्रारम्भ होता है।

८. गहमवार—यह ऋतु का पर्व है। हर ऋतु में एक गहमवार का पर्व पड़ता है। इस प्रकार वर्ष में छः गहमवार मनाये जाते हैं। ईश्वर ने ६ ऋतुयें और ६ उत्तम पदार्थ जो मनुष्य के लिए बनाये हैं उसका अहसान मानने के हेतु ये गहमवार के उत्सव पार्सी समाज में मनाये जाते हैं। वे ६ उत्तम पदार्थ हैं आसमान, जल, पृथ्वी, वनस्पति और पशु-पक्षी तथा मनुष्य।

प्रत्येक गहमवार लगातार पाँच दिन तक मनाया जाता है। पहला गहमवार 'माइध्यो जरिम' है जो अर्द्बहिश्त मास के ख़ुरदाद रोज़ को अर्थात् साल के ४५वें दिन मनाया जाता है। पार्सियों के विश्वास के अनुकूल इस दिन ईश्वर ने आसमान की सृष्टि की थी। यह वसन्त ऋतु का पर्व है।

दूसरा गहमवार 'माइध्यो शहिम' है जो तीन मास के ख़ुरशेद रोज़ को मनाया जाता है। इस दिन ईश्वर ने जल की सृष्टि की थी।

तीसरा गहमवार है 'पएटे शहम' जो शहरेवर मास के आस्ताद दिवस को मनाया जाता है। इस दिन ईश्वर ने पृथ्वी की रचना की थी।

अग्नि मंदिर के भीतर का अग्निकुण्ड

चौथा गहमवार 'अयथ्रेम' है जो महर माह के आस्ताद दिन को वनस्पति, वृक्ष आदि स्थावर जगत् की सृष्टि का एहसान मानने के हेतु मनाया जाता है।

पाँचवाँ गहमवार है 'माइद्यारिम' जो देह मास के महर रोज़ को मनाया जाता है। इस दिन पशु-जगत् की सृष्टि मानी जाती है।

छठा गहमवार वर्ष के अन्त में गाथा के दिनों में मनाया जाता है इसे 'हमस्पठमएद्यम' कहते हैं। इस दिन ईश्वर ने मानव-जगत् की सृष्टि की थी।

१२—अग्नि-पूजा

अग्नि का व्यवहार संसार में सर्वत्र बहुत काल से हो रहा है। अग्नि के बिना संसार का काम घड़ी भर भी नहीं चल सकता। अग्नि की उपयोगिता देखकर ही कदाचित् वैदिक युग में अग्नि-पूजा प्रचलित हुई होगी। कुछ भौगोलिक कारण भी अग्नि-पूजा में सहायक रहे होंगे। उस युग में अग्नि-पूजा का प्रचार बहुव्यापक हो गया था।

आज भी संसार की अनेक जातियों में अग्नि-पूजा किसी न किसी रूप में प्रचलित है। यों तो सभी जातियों ने अग्नि को सर्वश्रेष्ठ शक्ति का सर्वश्रेष्ठ आदर्श माना है। अग्नि ज्योतिर्मय भगवान् की प्रतिकृति या उसका अंश है। विश्व के सभी पदार्थ अग्नि से उत्पन्न हुए हैं। इसी लिए साग्निक जातियाँ अग्नि के स्थान में कोई अपवित्र वस्तु नहीं जाने देतीं। पूजा के समय अथवा अन्य समय में भी उत्तम काष्ठ, सुगन्धित वस्तुयें, मेवा, घृत आदि अग्नि को अर्पण करने का विधान है। भारत के आर्य आज भी प्रत्येक शुभ कार्य में हवन करके अग्नि प्रतिष्ठा करते हैं। पारसी लोगों की असाधारण अग्नि-पूजा सर्वसाधारण में प्रसिद्ध ही है।

पार्सियो की असाधारण अग्नि-प्रनिष्ठा से जनसाधारण में ऐसी भ्रान्ति फैल गई है कि पार्सी लोग अग्नि या सूर्य के पूजक अथवा उपासक हैं। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। पार्सियों की दृष्टि में अग्नि ईश्वर का अंश है अतः संसार में पवित्रता की द्योतक है। पार्सियो के अग्निमन्दिरो और घरों में सदैव इसी लिए अग्नि प्रज्वलित अवस्था में रक्खी जाती है कि लोग उसकी प्रविनता का ध्यान रखकर अपने जीवन को शुभ विचार (हुमत), शुभवचन (दुख़्त) और शुभ कर्म (हुवरश्त) वाला बनावे।

पार्सी लोग अग्नि की पूजा उस अर्थ में नही करते जिस अर्थ मे 'पूजा' शब्द का व्यवहार जनसाधारण में किया जाता है। जिस प्रकार अशिक्षित और नासमझ हिन्दू अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाकर घी, मिठाई पकवान व जल आदि से उनकी पूजा करते हैं, और उनसे मानता भी मानते हैं और उनके पूजन मे ही ईश-पूजा समझते हैं इस प्रकार से पार्सी लोग कभी भी अग्नि को देव समझकर नही पूजते। हाँ, केवल उसकी विशेष प्रतिष्ठा करते हैं और सदैव करते हैं। उनके घरों और मन्दिरों मे सदैव अग्नि जलती रहती है। अग्नि में बबूल की लकड़ी जलाई जाती है। मज़्दपूजा (दिन में पाँच बार) के समय चन्दन, अगर तथा लोबान आदि सुगन्धित चीज़े अग्नि में डाली जाती हैं। इन वस्तुओं को वे पूजा की दृष्टि से नहीं चढ़ाते। पूजा तो वे केवल एक मज़्द की ही करते हैं जिसकी घोषणा वे दिन में अनेक बार कुष्टि खोलते और बाँधते समय किया करते हैं।

पार्सी लोग अग्नि को आतश कहते हैं। अवस्ता मे अग्नि के लिए 'आतर' शब्द का व्यवहार किया गया है। पर वर्तमान पार्सी और गुजराती भाषा में आतर को आतश ही कहते हैं। आतर का अर्थ है भक्षक। आतर शब्द संस्कृत अद् धातु से सिद्ध होता है जिसका अर्थ है खाना या भक्षण करना। इसी लिए संस्कृत भाषा मे अग्नि को 'सर्वभुक्' भी कहते हैं।

ज़रथुस्त से पूर्व ईरान के लोग यज्ञों में पशु-बलि भी किया करते थे पर महात्मा ज़रथुस्त ने इस घृणित प्रथा को बन्द कराया। अब तो केवल चन्दन आदि काष्ठ ही हव्य पदार्थ समझे जाते हैं। विशेष अवसरों पर फल, दुग्ध तथा दासन (घी में पकी हुई, गेहूँ के आटे की छोटी पूड़ी) आदि अग्नि के सामने थोड़े काल के लिए रक्खे जाते हैं और फिर हटा लिये जाते हैं और प्रसाद की भाँति वितरण कर दिये जाते हैं।

यद्यपि अग्नि-मन्दिरों के निर्माण के विषय में अवस्ता ग्रन्थ में कोई उल्लेख नहीं किया गया फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में भी ईरान में अग्नि-मन्दिर बनते अवश्य थे। ये अग्निमन्दिर तीन प्रकार के होते हैं।

१—आतशे दादगा—अर्थात् छोटा मन्दिर जिसमें केवल एक दस्तूर धार्मिक कृत्यों के लिए रहता है।

२—आतशे आदरान—आतशे दादगा से बड़ा होता है। इसमें कम से कम दो दस्तूर रहते हैं।

३—आतशे बहरान (सबसे बड़ा मन्दिर)। इस मन्दिर के बनवाते समय विशेष आयोजन करना पड़ता है। कम से कम १६ विभिन्न स्थानों की अग्नि लाकर स्थापित की जाती है। इस प्रकार का पार्सियों का एक विशाल मन्दिर सूरत के पास उद्वादा नगर में है। इसमें दो से अधिक दस्तूरों के लिए प्रबन्ध रहता है।

मन्दिर का सारा ख़र्च और दस्तूरों का वेतन आदि स्थानीय पार्सी समाज अथवा एक ही व्यक्ति देता है। दस्तूरों को वेतन काफ़ी दिया जाता है जिससे कि वे लोग परिवार के साथ अच्छा जीवन व्यतीत कर सकें। उनका पार्सी समाज में मान भी अधिक होता है।

१३—संवत् और साल

वर्तमान पारसी संवत् अन्तिम ज़रथुस्ती धर्मानुयायी पारसी राजा यज्दज़र्द (Yazdzard) के राजतिलक दिवस से प्रारम्भ होता है। यह घटना ईसवी सन् ६३० में हुई। अर्थात् ईसवी सन् और पारसी संवत् में ६३० वर्ष का अन्तर है। पारसी संवत् ६३० वर्ष पीछे प्रारम्भ हुआ। इस संवत् से पूर्व के पारसी संवतों का अब कोई उल्लेख इतिहास ग्रन्थों मे नहीं मिलता।

पारसी वर्ष बारह महीने या पूरे ३६५ दिन का होता है। पुराने वर्ष के समाप्त हो जाने के पाँच दिन बाद नया वर्ष चालू होता है। ये मध्य के पाँच दिन, जिन्हें 'गाथा के ५ रोज़' कहा गया है, किसी तरफ़ शामिल नहीं किये जाते। वर्ष के बारह महीनों के नाम हैं १ —फ़रवर्दीन, २—अर्देबशिस्त, ३—खोरदाद, ४—तीर, ५—अमरदाद, ६—शहरेवार, ७—मिहर, ८—आवाँ, ९—आदर, १०—देह, ११—बहमन, १२—अस्पन्दरमह। हर महीना पूरे तीस दिन का होता है और हर दिन का नाम भी पृथक् होता है। यह एक विचित्रता है जो अन्य लोगों के पत्राओं में नहीं पाई जाती। दूसरे लोग तो केवल सात दिन से ही काम चला लेते हैं। वे ही दिन फिर दूसरे सप्ताह में आते हैं। इस प्रकार हर महीने में एक दिन कम से कम चार बार अवश्य आता है। पर पारसी दिवस हर माह में केवल एक ही बार होता है। पारसी मास के तीस दिनों के नाम क्रम से ये हैं : १—हुरमुज्द, २—बहमन, ३—अर्देवशिस्त, ४—शहरेवार, ५—अस्पन्दर मद, ६—ख़ोरदाद, ७—अमरदाद, ८—दीपदार (Depadar) ९- आदर, १०—आवाँ, ११—ख़ुरशेद, १२—मोहर, १३—तीर, १४—गोश, १५—दापमिहर, १६—मेहर, १७—सरोश, १८—रासना, १९—फरवर्दीन, २०—बहरान, २१—२२—गोवाद, २३—देपदीन, २४—दीन, २५—अर-

शेशांग, २६—अर्ज़ताद, २७—अस्मान, २८—आमयाद, २९ मारेस्पन्द, ३०—अनेरान।

वर्ष में चार ऋतुयें होती हैं। हर ऋतु पूरे तीन-तीन मास की होती है। फ़रवर्दीन, अर्देवशिस्त और ख़ोरदाद महीनों में बसन्त ऋतु होती है। तीर, अमरदाद और शहरदाद में गर्मी की ऋतु आती है। मेहाल, आवाँ और आदर पतझड़ के महीने हैं। दे, बहमन और अस्पन्दरमद में शीत पड़ता है।

ईरान में जाड़ा अत्यधिक पड़ता है। शीत की भयङ्करता का उल्लेख ईरान की प्राचीन पुस्तकों में भी किया गया है। वेन्दीदाद ग्रंथ के दूसरे अध्याय (फरगर्द) से एक उद्धरण यहाँ दिया जाता है।

अहुरमज़्द ने यम से कहा, "विवानवाहु के पुत्र सुन्दर यम! शीत की आपत्ति प्राणि-जगत् पर आवेगी और घोर नाशकारी तुषार पैदा होगा।"

(Then spake Ahur Mazd, to Yima, "Yima, the fair, the son of Vibanvahao.
Upon the corporeal world will the evil of winter come
Wherefore vehement destroying frost will arise.

जब शीत आयेगा तो पर्वतों के शिखरों पर चारों ओर ज़ोर का हिमपात होगा।

(Snow will fall on the summits of the mountains on the breadth of the heights)

अतः आत्मरक्षा के लिए प्राणियों को तीन स्थानों से भाग जाना चाहिए। भयानक स्थानों से, पर्वतों के शिखरों से और घाटियों के निचले भागों से हटकर सुरक्षित स्थानों में चले जावें।

(From three places O. Yima let them call to depart.
If they are on the most fearful places.
If they are on the tops of the mountains.
If they are in the depth of the valley.
To secure dwelling places.

शीत के आगमन के पूर्व देश में घास उत्पन्न होगी। बर्फ़ पिघलने के पूर्व स्वच्छ जल बहेगा और चारों ओर बादल घुमड़ेंगे, जिसे छोटे और बड़े सभी जीव देखेंगे। (Before this winter the country

produced pasture.
Before flow waters, behind is the melting of
the snow, clouds, O Yima
Will come over the inhabitanted region
Which now behold the set of the greater and
smaller cattle)

इसलिए हे यम, बहुत बड़े मैदान को चारों ओर से घेरकर ऐसा सुरक्षित स्थान बना लो जहाँ पशु, पक्षी, कुत्ते, आदमी और प्रज्वलित लाल अग्नि रह सके।" (Therefore make thou a circle of the length of a race ground to all four corners. Thither thou brings the need of the cattle, of the beasts of burden and of men and of dogs, of brids and of red burning fires). From Spiegels Translation.

१४—भारतीय आर्यधर्म और पार्सी धर्म की समता

१—वेद और ज़न्दावस्ता।

पृथ्वी पर वेद और ज़न्दावस्ता दो महान् ग्रन्थों ने आर्य जाति की दो शाखाओं के धर्मनिरूपण का महागौरवमय स्थान प्राप्त किया है। इन दोनों ग्रन्थों का एक साथ अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि इन दोनों में आश्चर्यजनक सादृश्य है। इस सादृश्य को देखकर रायल एशियाटिक सोसायटी के संस्थापक सर विलियम जोन्स साहब लिखते हैं कि "जब मैंने ज़न्दावस्ता के शब्दकोष का अनुशीलन किया तो यह देखकर कि दस

में छः या सात शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं, अकथनीय आश्चर्य हुआ।" ज़रथुस्ती साहित्य के अपूर्व विद्वान् डाक्टर हाग (Haug) का कथन है कि "अवस्ता की भाषा का प्राचीन संस्कृत से, जिसे आजकल वैदिक भाषा कहते हैं, इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना यूनानी भाषा की विविध बोलियों (Arabic, coric, doric Attic) का एक दूसरे से। ब्राह्मण-ग्रन्थों के पवित्र मन्त्रों की भाषा और पार्सियों के मन्त्रों की भाषा एक ही जाति के दो फ़िरक़ों की भाषायें हैं। प्राचीन ब्राह्मण और पार्सी आर्य जाति के दो फ़िरक़े थे जिसका उल्लेख वेदों और ज़न्दावस्ता मे है।"

ईंगलैंड के प्रसिद्ध संस्कृत प्रोफ़ेसर श्री मोक्षमूलर (Max Muller) फ़रमाते हैं कि ज़न्द भाषा संस्कृत से अधिक सामीप्य रखती है। ज़न्द भाषा और संस्कृत में भेद विशेषतः ऊष्म आनुनासिक और विसर्ग का है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं—

(अ) संस्कृत 'स' ज़न्द मे 'ह' हो जाता है जैसे :—

संस्कृत	ज़न्द	अर्थ
असुर	अहुर	वैदिक देवता (वर्तमान राक्षस)
सोम	होम	ओषधि-विशेष
सप्त	हफ़्त	सात
सेना	हेना	फ़ौज
मास	माह	महीना

(ब) संस्कृत 'ह' ज़न्द में 'ज़' हो जाता है जैसे :—

सं०	ज़०	अर्थ
हस्त	ज़स्त	हाथ
हृदय	ज़रदय	हृदय
होता	ज़ोता	यज्ञ करनेवाला
वाराह	बाराज़	शूकर
आहुति	आज़ुति	आहुति
अहि	अज़ि	सर्प

(स) संस्कृत 'ज' बदलकर ज़न्द में 'ज़' हो जाता है, जैसे :—

सं०	ज़ं०	अर्थ
जन	ज़न	पैदा करना
जिह्वा	जिव्हा	जीभ
जानु	जानु	घुटना
यजत	यजत	पूजनीय

(द) संस्कृत 'श्व' ज़ंद में 'स्य' हो जाता है, जैसे :—

सं०	ज़ं०	अर्थ
विश्व	विस्य	संसार
अश्व	अस्य	घोड़ा
श्वान	स्यान	कुत्ता

(य) संस्कृत 'त' ज़न्द में 'थ' हो जाता है, जैसे :—

सं०	ज़ं०	अर्थ
मित्र	मिथ्र	सूर्य
त्रित	थ्रिथ	वैद्य
मन्त्र	मन्थ्र	सलाह

(र) बहुत से संस्कृत भाषा के शब्द ज़न्द में बिना किसी परिवर्तन के प्रयोग में आते हैं। कुछ में केवल स्वर।आदि का भेद हुआ है, जैसे :—

संस्कृत	ज़न्द	अर्थ
पितृ	पितर	पिता
मातृ	मातर	माता
दुहिता	दुग्धर	बेटी
पशु	पसु	जानवर
गो	गाउ	गाय
वात	बाद	हवा
नमस्ते	नमस्ते	नमस्कार
यम	यिम	शासक

वृत्रहन	वृथ्रघ्न	देव-विशेष
इषु	इशु	बाण
प्रश्न	प्रस्न	सवाल
गाथा	गाथा	कहानी
छन्द	जंद	पद्य
अवस्था	अवस्ता	दशा

इस प्रकार के सहस्रों उदाहरण वेद और अवस्ता के भाषा-साम्य के मिलते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत यही होता है कि ज़न्द भाषा कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं है किन्तु वैदिक भाषा का ही रूपान्तर या अपभ्रंश है।

२—छन्द-सादृश्य।

ज़न्दावस्ता की छन्द-रचना भी वेदों के सदृश ही है। इस पर डाक्टर हाग कहते हैं कि "जो छन्द गाथाओं में प्रयुक्त हुए हैं वे उसी तरह के हैं जैसे कि वेदमन्त्रों में।" पादरी मिल्स का कहना है कि "वैदिक मन्त्रों के छन्द, गाथा और उत्तरकालीन अवस्ता के पद्यों से बहुत कुछ सादृश्य रखते हैं"। उदाहरणार्थ स्पेन्तामन्यु गाथा के विषय में उनकी सम्मति है कि इसके छन्द को त्रिष्टुप् कहा जा सकता है क्योंकि उसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर हैं और उसकी पूर्ति चार चरणों में हुई है। इसके अतिरिक्त गायत्री, अनुष्टुप्, आसुरी आदि छन्दों के उदाहरण भी ज़न्दावस्ता में बहुत मिलते हैं।

३—देवताओं के नाम का सादृश्य।

वेद और अवस्ता दोनों ग्रन्थों में देव और असुर शब्दों का प्रयोग किया गया है किन्तु आश्चर्य यह है कि अवस्ता में आरम्भ से अन्त तक दुष्ट प्राणियों को देव कहा गया है। आधुनिक पार्सी साहित्य में भी देव शब्द का वही अर्थ किया गया है। बाइबिल का शैतान, अवस्ता का देव और वेद का असुर एक ही हैं। अवस्ता का असुर सम्पूर्ण सांसारिक कष्टों का देनेवाला है। वह पृथ्वी पर अपवित्रता और मृत्यु का कारण होता है। वह सदैव मज़्द की सृष्टि के संहार की विधि सोचा

करता है। भूत-प्रेतों की भाँति इन देवों का निवासस्थान कदर्य (श्मशान) माना गया है।

पौराणिक साहित्य मे भी असुर शब्द का प्रयोग दुष्ट के ही अर्थ में हुआ है। पर ऋग्वेद में असुर शब्द देवताओं का प्रशंसक है।

"इन्द्र असुरो बृहच्छ्रवा"—ऋ० १. ५४,३

वरुण असुर प्रचेतराजन —ऋ० १. २४,२४

सूर्य असुर सुनीथ: —ऋ० ४.२.१

वेद और अवस्ता दोनों में ही देव और असुर का वर्णन पाया जाता है। हाँ. इतना अवश्य है कि ऋग्वेद के सिवा अन्य तीनों वेदों में देवों को पूज्य और असुरों को हेय माना है।

वैदिक देवता मित्र अवस्ता के मिथ्र् हैं। वैदिक इन्द्र अवस्ता के अङ्गिरामान्यू (शैतान) हैं। अवस्ता के शर्व और नौन्हात्यदेव वेद के शिव और नासत्यदेव (अश्विनीकुमार) हैं।

कुछ वैदिक देवताओं के नाम अवस्ता के देवदूतों में गृहीत हुए हैं, जिनमें मित्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वेदों में मित्र का आह्वान वरुण के साथ किया गया है पर अवस्ता में वह अलग कर दिया गया है। दूसरा वैदिक देवता जिसका वर्णन वरुण और मित्र के साथ आता है 'अर्यमा' है। अवस्ता में उसे अर्यमन कहा गया है।

वैदिक देव 'भग' को अवस्ता में 'बग' कहा गया है। वेद की अर्मती देवी अवस्ता में ठीक उसी रूप में आई है। नाराशंस का इस्तेमाल वेदों में कई देवताओ के लिए किया गया है। अवस्ता में अहुरमज़्द का संदेशवाहक नैरो संघ के रूप में प्रकट हुआ है। जस्न, यह पार्सियों के विश्वास के अनुसार रूप का देवता है। वेद में सन्देशवहन का कार्य अग्नि देवता से लिया गया है। वेद का वायु अवस्ता का सर्वत्र भ्रमण करनेवाला 'वायु' है। वैदिक वृत्र शब्द इन्द्र के लिए आता है पर अवस्ता में वह स्वतन्त्र वैरेथ्रघ्न है जो भगवान् का अनुचर है और पूजनीय है। (Haug's Religion of the Parsees)

वेद और अवस्ता दोनों में एक और साम्य है। वेद में देवताओं की संख्या ३३ कही गई है (त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिः ऋ० १, ३४, ५) । अवस्ता में भी ३३ रतु या प्रधान माने गये हैं (यस्न १—१०) जिन पर आवस्तिक धर्म की रक्षा का भार है।

४—उपाख्यान-सादृश्य :—

वैदिक साहित्य और अवस्तीय साहित्य में केवल देवताओं के नाम का ही सादृश्य नहीं है वरन कथानकों में भी बहुत कुछ समता है। पर इतनी समता होते हुए भी पारसी और वैदिक विचारों में इन कथाओं के सम्बन्ध में बड़ा भेद है। वैदिक साहित्य में वे कथायें देवताओं को लक्ष्य करके लिखी गई हैं पर पारसी साहित्य में कुछ तो वीरों के विषय में तथा कुछ फ़रिश्तों के सम्बन्ध में लिखी गई हैं। उदाहरण के लिए लीजिए अवस्ता का जमशेद (यमक्षेत्र) और वेद का यमराज। नाम व विशेषण दोनों में एक से ही हैं। यम दोनों में समान है तथा क्षेत्र का अर्थ है राजा अतः दोनों का उपनाम एक ही है। अवस्ता में वह 'विवंघाम' का पुत्र है; वेद में वैवस्वत का पुत्र। अवस्ता के यिम ने मनुष्यों और पशुओं का संग्रह करके उन्हें पृथ्वी पर छोड़ दिया पर शीघ्र ही जब पृथ्वी पर शीत आदि का कष्ट उपस्थित हुआ तो उनकी रक्षा की। उन्हें एक सुरक्षित स्थान में रक्खा। ऋग्वेद के यम मानवजाति के पिता थे। उन्होंने सब से प्रथम मृत्यु-कष्ट का अनुभव किया और स्वर्ग में पहुँचे। वहाँ उन्होंने अधिवासियों के लिए ऐसा स्थान बनाया जहाँ से कोई हटा न सके। वही पितृलोक है। इसी स्वर्ग के राजा यम को पुराणों ने मृत्यु का देवता माना है। अवस्ता में वह बहिश्त का राजा था।

अवस्ता का थ्रित अंगिरामन्यु (अहिरमन) द्वारा पैदा किये हुए रोगों को दूर करनेवाला है। वैदिक त्रित भी मानव व्याधियों को दूर करता है।

पार्सी धर्म में 'काउस' ने एक मुख्य स्थान पाया है। ऐसा प्रसिद्ध है कि वह ईरान का एक महापुरुष था। भारतीय काव्य लोक में 'काव्य

उशनस्' शुक्राचार्य के नाम से विख्यात हुए और दैत्यों के गुरु माने गये। वैदिक साहित्य में वे इन्द्र के साथ हैं। अवस्ता का कव उशनश उपकारी होते हुए भी अहङ्कारी था। उसने स्वर्ग को उड़कर पहुँचने की इच्छा की थी। अतः उसे कठोर दण्ड दिया गया। वैदिक काव्य उशनस् मानवजाति के पुरोहित हैं। वे स्वर्ग की गायों को चरानेवाले तथा इन्द्र की गदा के निर्माता कहे जाते हैं।

वेद और अवस्ता दोनों ग्रन्थों में 'दानव' शब्द का एक ही अर्थ में प्रयोग किया गया है।

५—पर्वसाम्य :—

पार्सियों के याज्ञिक पर्व थोड़े से उत्सवों में सीमित है पर फिर भी यदि हम भारतीय आर्य (हिन्दू) पर्वों से तुलना करें तो बहुत साहश्य पाते हैं। सबसे प्रथम धार्मिक कृत्यों की समानता देखिए। यज्ञ करानेवाले पुरोहित के लिए अवस्ता में अथ्रवन शब्द आता है। वेद में उसके लिए अथर्वन शब्द का प्रयोग किया गया है। वैदिक साहित्य के 'इष्टि' और 'आहुति' अवस्ता के 'इस्टी' और 'आज़ुती' से मिलते हैं। वेद के 'होता' अवस्ता के 'ज़ोता' हैं। वेद के 'अध्वर्यु' अवस्ता के 'राथ्वी' या रास्य तथा वेद के अग्नीन्ध्र अवस्ता के 'अतरवक्षी' हैं।

भारतवासियों का सोमयाग और ईरानियों का हओम एक ही हैं। भारतवासियों का सोमरस जो अमृततुल्य देव योग्य पीने का दिव्य पदार्थ था, ईरानियों के यहाँ अमरतात के रूप में आता है।

पार्सियों का यजिश्न यज्ञ तथा वैदिक ज्योतिष्टोम व अग्निष्टोम एक ही हैं। अग्निष्टोम यज्ञ में चार अजों (बकरों) की बलि का विधान है पर पार्सियों के यहाँ केवल बैल के बाल एक पात्र में रखकर अग्नि के समीप रक्खे जाते हैं। कोई बलि नहीं दी जाती।

वैदिक पुरोडाश के समान ही पार्सियों में 'दासन' (पवित्र रोटी) का प्रयोग होता है। शान्तोदक के समान ही 'ज़ौथ्' का व्यवहार होता है।

ज्योतिष्टोम व यजिस्न दोनों में सोमरस अर्पण करने की परिपाटी है। दोनों में वेदी के समीप ही पत्तों से रस निकाला जाता है। ब्राह्मण लोग सोम के स्थान पर 'पूतिका' का प्रयोग करने लगे हैं। पार्सी लोग इसी प्रकार के एक पौधे के पत्ते का इस्तेमाल करते हैं जो ईरान में बहुत होता है। रस निकालने की विधि दोनों में कुछ भिन्न है। उस रस को पार्सियों में एक ही ज़ोता (होता) पीता है। ब्राह्मणों में सभी देवताओं को पीना आवश्यक है। पार्सी पुरोहित अग्नि को दिखलाकर उस रस का पान कर लेता है, पर ब्राह्मण पुरोहित भिन्न-भिन्न देवताओं के नाम से अग्नि में चढ़ाकर पीवेंगे। इसके बाद पार्सियों में दुबारा सोमरस तैयार करने की प्रथा है। दुबारा निकाले हुए रस को कुएँ में डाल देते हैं। इस प्रथा की समानता हम वैदिक "प्रातःसवन" और 'माध्यन्दिन सवन' से कर सकते हैं। पार्सी पद्धति में सायं सवन नहीं होता क्योंकि वे लोग सायंकाल या रात को 'सवन' नहीं करते।

जिस प्रकार सोमयज्ञों में ब्राह्मणों में वेदी के पास 'कुश' रखने की प्रथा है उसी प्रकार पार्सियों में भी 'बरसम' की पत्तियाँ तथा शाखें 'यजिश्न' यज्ञ में रखने की प्रणाली है. यद्यपि दोनों के प्रयोजन भिन्न हैं।

पार्सियों की 'आफ़रगन' क्रिया वैदिक 'आपी' (तर्पण) कर्म से मिलती-जुलती है। अन्तर इतना है कि भारत के आर्य (हिन्दू) देवताओं का आह्वान करते हैं पर पार्सी लोग मृतात्माओं तथा देवदूतों का।

पार्सियों का दासन उत्सव भारतीय आर्यों (हिन्दुओं) के दर्श-पौर्णमासेष्टि यज्ञ का ही रूपान्तर है। चतुर्मासेष्टि यज्ञ के समान ही पार्सियों का "गहमबार" उत्सव होता है।

६—संस्कार-साम्य।

पार्सी धर्म व भारतीय आर्यधर्म के धार्मिक संस्कारों में भी अधिक समानता है। उदाहरण के लिए दो-एक संस्कार पर्याप्त हैं। शारीरिक

शुद्धि तथा प्रायश्चित्त के लिए दोनों जातियों में 'पञ्चगव्य' का प्रयोग समान रूप से किया जाता है। यह पञ्चगव्य एक मिश्रण है जो गौ से प्राप्त पाँच वस्तुओं—गोबर, मूत्र, दुग्ध, दही तथा घृत—के मिलाने से बनता है। इसके प्रयोग की प्रथा बहुत प्राचीन है। इसकी उपयोगिता को सभ्य कहलानेवाले योरोप के लोग भी अब स्वीकार करने लगे हैं।

पार्सियों में भी भारतीय आर्यों की भाँति यज्ञोपवीत संस्कार को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। जिस प्रकार भारतीय द्विजों में जब तक बालक यज्ञोपवीत धारण नहीं कर लेता तब तक उसे वेद पढ़ने का अधिकार प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार पार्सियों में जब तक 'कुश्टि' संस्कार नहीं हो जाता, बालक को जाति में धार्मिक अधिकार प्राप्त नहीं होते। पार्सियों में यह संस्कार सातवें वर्ष से १५ वर्ष तक की आयु में होता है; भारतीयों में ८ से १६ वर्ष तक की आयु में।

अन्त्येष्टि संस्कार में भी दोनों धर्मों में बहुत साम्य है। मृत्यु के पश्चात् जिस प्रकार भारतीयों में मृतात्मा की शान्ति के लिए ईश-प्रार्थना की जाती है, उसी प्रकार पार्सियों में भी तीसरे दिन मृतात्मा को स्वर्ग भेजने के लिए मज़्द प्रार्थना की प्रथा है। दशवें दिन भारतीयों की 'काकस्पर्श' क्रिया की भाँति पार्सियों में भी एक रस्म है जिसमें यजस्न का पाठ किया जाता है।

दोनों धर्मों में सृष्टि-विचार भी समान ही है। भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म विश्व का विभाजन सात द्वीपों में करता है, पार्सी लोग दुनियाँ के सात 'किशवर' मानते हैं। दोनों धर्म विश्व के मध्य में एक पर्वत की कल्पना करते हैं। भारतीयों का काल्पनिक पर्वत 'मेरु' है, पार्सियों का 'अलबुर्ज' है।

७ वर्णव्यवस्था साम्य।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य: कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।

ऋ० १०।९०।११

यह मन्त्र ऋग्वेद का है। इसका अर्थ है कि ब्राह्मण उसके (मनुष्य जाति के) मस्तक हैं, क्षत्रिय उसकी भुजा हैं, वैश्य उसके जंघातुल्य हैं और शूद्र उसके पैर हैं।

मनुष्य-समाज की यही वर्णव्यवस्था ठीक इसी रूप में ज़न्दावस्ता में भी पाई जाती है। केवल नामों का भेद है। ब्राह्मणों के लिए अथूवन या अठोरनान, क्षत्रियों के लिए रथेस्तारान, वैश्य के लिए वास्त्रियोक्षान तथा शूद्र के लिए हुतोक्षान शब्द का प्रयोग हुआ है।

पारसी धर्म की अर्वाचीन पुस्तकों में भी इन चार वर्णों का वर्णन मिलता है यद्यपि उनमें नाम भिन्न-भिन्न हैं। "मिहआबाद" ग्रन्थ में लिखा है "हे आबाद, ईश्वर की इच्छा आबादियों के धर्म के विरुद्ध नहीं है। निम्नलिखित चार वर्णों में से जो कोई इस मार्ग पर चलेगा वह स्वर्ग पावेगा—हूरिस्तारान, नूरिस्तारान, सूरिस्तारान तथा रोज़िस्तारान।" इन शब्दों की टीका विद्वद्वर 'शासन' पंचम ने इस प्रकार की है—हूरिस्तारान को पहलवी भाषा में अठोरनान कहते हैं। ये पुरोहित हैं और इसलिए बनाये गये हैं कि धर्म की रक्षा करें। उसकी उन्नति और अन्वेषण करें और शासन-सम्बन्धी कार्यों में सहायता करें।

नूरिस्तारान को पहलवी भाषा में रथेस्तारान कहते हैं। ये राजा और योद्धा हैं। राष्ट्र की रक्षा का भार इन्हीं पर रहता है। सोरिस्तारान को पहलवी में वास्त्रयोक्षारान कहते हैं। ये कृषिकर्म, शिल्प व व्यापार करते हैं। रोज़िस्तारान को पहलवी में अटोक्षान कहते हैं। वे अनेक प्रकार के सेवाकार्य करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पारसी धर्म और भारतीय आर्यधर्म (वैदिक धर्म) के मूल सिद्धान्तों में इतनी समानता है जिसे देखकर कौन विचारशील व्यक्ति होगा जो यह न कहेगा कि ये दोनों धर्म मूल में एक ही थे। इस साम्य पर हम केवल एक पारसी विद्वान् श्री ख़ुरशेदजी एन० सारभाई की सम्मति उद्धृत करते हैं। वे अपनी पुस्तक "ब्रह्म-विद्या की रोशनी में ज़रथुस्ती धर्म" (Zorostrianian in the Light

of Theosophy) में लिखते हैं "पवित्र वैदिक धर्म और ज़रथुस्ती धर्म एक ही हैं। ज़रथुस्ती मत उन दूषणों और मिथ्या विश्वासों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रादुर्भूत हुआ जिन्होने विशुद्ध वैदिक सत्य पर परदा डाल दिया था और पुरोहित और प्रजाघातक राजाओ के स्वार्थ-साधनार्थ प्राचीन प्रशस्त धर्म का स्थान हरण कर लिया था। ज़रथुस्त ने प्राचीन समय मे वही काम किया था जो महात्मा बुद्ध ने उसके पश्चात् किया।"

१५–ईरान की प्राचीन भाषा और साहित्य

जब सिकन्दर ने एशिया को विजय करने के अभिप्राय से ईरान पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी पर्सीपोलिस को जलाया तो पार्सीमत के अनेकों ग्रन्थ सदैव के लिए नष्ट हो गये। पर उन ग्रन्थों के प्रमाण अन्य प्राप्त ग्रन्थों में दिये गये हैं इसलिए उनके नाम अब भी अवशिष्ट हैं। पार्सी पुरोहितों (दस्तूरों) ने जिन ग्रन्थों की बड़ी कठिनाई से रक्षा की थी वे ही ग्रन्थ अपूर्ण दशा मे आज हमें प्राप्त हैं। वर्तमान प्राप्त ग्रन्थो को हम चार भागो में बाँट सकते हैं।

१—यस्न (Yasna) इसमें गाथा, विश्परद और यश्त नाम के तीन भाग हैं।

२—न्याइश। ३—वन्दीदाद। ४—खण्डित अंश।

यस्न पहलवी भाषा में पार्सियो का मुख्य उपासना ग्रन्थ है। यस्न नामक धर्मानुष्ठान में इस ग्रन्थ का पाठ किया जाता है। इस ग्रन्थ में १७ अध्याय हैं। इसी कारण यस्नी (याचनी) लोग अपनी मेखला में १७ अंश रखते हैं। इस ग्रन्थ के मुख्यतः तीन भाग हैं। प्रथम भाग में अहुर मज़्द तथा अन्य देवो (असुरो) की स्तुति, अनुष्ठान तथा पूजा

प्राचीन पारसी संस्कृति के पुनरुद्धारक ईरान के भूतपूर्व सम्राट् रज़ाशाह पहलवी

का वर्णन है। दूसरे भाग में अग्नि के विभिन्न रूपों का आवाहन है तीसरे भाग में तीन पवित्र प्रार्थनाओं की उत्तम व्याख्या की गई है।

गाथा—पार्सियों की धर्मपुस्तक जो शुद्ध आवस्तिक भाषा में है 'गाथा' कहलाती है। सम्पूर्ण 'अवस्ता' साहित्य में 'गाथा' ही अधिक मूल्यवान् हैं। ये गाथायें छन्दोबद्ध हैं। इनकी लेखन-शैली 'अवस्ता' के अन्य अंशों से भिन्न है। ये गाथायें संख्या में कुल ५ हैं। इनमें ईशस्तुति व प्रार्थना के सुन्दर मन्त्र हैं।

विश्परद—इसे यस्न का परिशिष्ट भाग कहना चाहिए; क्योंकि इसकी भाषा व शैली आदि सब उसी के अनुकूल है। इसमें समस्त देवताओं के आवाहन और अर्थशास्त्र का उल्लेख है।

यश्त—इसमें २१ स्तोत्र हैं। इसमें पार्सी धर्म के देवदूतों तथा धर्मवीरों की प्रशंसा की गई है। इसी ग्रन्थ में हमें महात्मा ज़रथुस्त के जीवन के कुछ अंश प्राप्त होते हैं। भिन्न-भिन्न देवदूतों के नाम से भिन्न-भिन्न यश्त हैं जैसे 'अहुरमज़्दयश्त', 'ख़ुर्शेद यश्त', 'औश यश्त' 'हफ़तानयश्त', 'बहरामयश्त' आदि।

न्याइश—ये भी पहलवी भाषा के ग्रन्थ हैं। इनमें सूर्य, चन्द्र, जल, अग्नि, ख़ुरशेद, मिथ्र, 'आतस' आदि की स्तुतियाँ हैं।

वेन्दीदाद—इस ग्रन्थ में सृष्टि-रचना तथा ईशकृत १६ लोकों का विस्तृत वर्णन है। स्वास्थ्यरक्षा के नियम तथा मृतकसंस्कार आदि का भी विवेचन इसमें किया गया है। क़ानून तथा राजनीति भी इसी ग्रन्थ में हैं।

खण्डित अंश—खण्डित अंश-समूह 'अवस्ता' तथा शुद्ध पहलवी ग्रन्थों के मध्य के ग्रन्थ हैं जिनमें ज़न्दावस्ता के अनेकों उद्धरण तो दिये गये हैं पर वे अब वर्तमान 'ज़न्दावस्ता' ग्रन्थ में नहीं मिलते। इनमें प्रायः कर्मकाण्ड का विधान है। इस श्रेणी के अब तक तीन ग्रन्थ मिले हैं—

(१) निरगिस्तान, (२) फ़रहङ्ग—अवस्ता तथा पहलवी भाषा का कोष और (३) आफ़रीनवहमान।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ और भी ग्रन्थ हैं जो शुद्ध पहलवी भाषा में हैं। इनमें पार्सी मत सम्बन्धी सब प्रकार के कर्मकाण्डों का विधान है और कुछ इतिहास भी पाया जाता है। इस प्रकार के जो ग्रन्थ अब तक खोज करने से मिल चुके हैं वे ये हैं :—

१—वज़र ख़िरद दीनी, २—दीनी ख़िरद—ज़रथुस्त से पूर्व के दस्तूरों का वर्णन, ३—दादिस्ताने दीनी- इसमें प्रश्नोत्तर के रूप में पार्सी धर्म सम्बन्धी शङ्काओं का समाधन किया गया है, ४—सिकन्दर गुमान विजर, ५—वन्दाईश, ६—मिनोख़िरद, ७—शायस्तला शायस्त—यज्ञोपवीत का प्रकरण है। ८—अर्दाविराफ़नामा, इसमें परलोक का काल्पनिक वर्णन है। ६—मवीगाने गोश्ते फरियान, १०—वहमन यश्त। इनके अतिरिक्त इसी श्रेणी के और भी छोटे छोटे ग्रन्थ मिले हैं जिनमें मुख्य 'ज़रथुस्तनामा' तथा 'शाहनामा' हैं।

ये सारे ग्रन्थ जिनकी चर्चा ऊपर की गई है, दो प्रकार की भाषाओं में हैं। मूल 'अवस्ता' ग्रन्थ की भाषा 'अवस्तीय' भाषा कहलाती है। यह ईरान की प्राचीन भाषा है। इस भाषा का वैदिक संस्कृत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी साम्य को देखकर मार्टिन हाग ने कहा है कि "वैदिक संस्कृत और अवस्ता की भाषा के व्याकरण में बहुत थोड़ा भेद है और जो है वह भी उच्चारण और शब्दों में।"

अवस्ता के अन्य भागों की भाषा से गाथा की भाषा उतनी ही भिन्न है जितनी कि वैदिक संस्कृत से वर्तमान साहित्यिक संस्कृत। अवस्ता के अन्य ग्रन्थों की भाषा 'पहलवी' कहलाती है। यह प्राचीन ईरानी (अवस्ता) भाषा का प्रथम अपभ्रंश है। यही भाषा बिगड़ते-बिगड़ते वर्तमान फ़ारसी बन गई। पार्सियों की अन्तिम पुस्तकें सभी पहलवी भाषा में हैं। अवस्ता और पहलवी दोनों भाषाओं की लिपि एक ही है। वे दोनों दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जाती हैं।

१६—अन्वेषण और अध्ययन

पुस्तक समाप्त करने से पहले पाठकों को यह भी जान लेना परमावश्यक है कि शताब्दियों से भूले हुए पार्सी धर्म का पुनः सभ्य संसार को परिचय कब और कैसे हुआ। प्राचीन काल में पार्सी धर्म को मागी धर्म भी कहते थे। मागी धर्म का उल्लेख पहले पहल यहूदियों की धर्म-पुस्तक तौरेत (Old Testament) के अध्याय ३९ आयत ३ में हुआ है जहाँ पैग़म्बर जरीमाया ने सम्राट् नैबुकेदनज़र के जरूसलम में प्रवेश करते समय का ज़िक्र किया है कि सम्राट् की सवारी के साथ एक व्यक्ति रगमग (Rag Mag) भी था। रग (Rag) का अर्थ है प्रधान पुरुष या मुखिया और मग का अर्थ है मागी धर्म का माननेवाला। यह ऐतिहासिक सत्य है कि बैबीलोनिया के सम्राट् नैबुकेदनज़र ने ईरान को विजयकर उसके प्राचीन धर्म के आचार्य को अपने साथ लिया था। यह घटना ईसा से लगभग ५८८ वर्ष पूर्व की है।

इसके अनन्तर हमें पार्सियों का वर्णन उसी पुस्तक के पैग़म्बर इज़ाकिल अध्याय ८, आयत १६ व १७ में मिलता है। वहाँ लिखा है कि "कुछ यहूदी अपने मन्दिर के द्वार की ओर पीठ करके अपना मुख पूर्व को किये हुए सूर्य की पूजा करते थे।"

नवीन अहदनामा (New Testament) मे भी सन्त मत्ती (Mathew) ने मागी (Magi) शब्द का प्रयोग किया है। वे कहते हैं कि "हिरोत राजा के राजत्वकाल में जब जूद के नगर बैन्थलम में ईसा का जन्म हुआ तो बुद्धिमान् मागी लोग पूर्व से जरूसलम को आये।" (Now when Jesus was born in Benthlum of Judia in the days of Herod, the king, behold there came wisemen (Magi) from the east to Jeruslem.

इसके पश्चात् पार्सी धर्म का वर्णन इतिहास-पिता (Father of History) यूनानी लेखक हिरोडोटस (Herodotus) ने, जो ईसा से

४५० वर्ष पूर्व हुआ था, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इतिहास' (History) के अध्याय १३१ और १३२ में किया है। उसी पुस्तक के अध्याय ८१ व ८२ में पार्सियों के कर्मकांड के विषय में भी कुछ लिखा गया है। हिरोडोटस के पश्चात् ईसा से ४०० वर्ष पूर्व टिशियश (Rtesias), ३५० वर्ष पूर्ब डीनन (Denun), ३०० वर्ष पूर्व थियोपाम्पस और २५० वर्ष ईसा से पूर्व हर्मीपास (Harmippas) ने अपने-अपने ग्रंथों में पार्सी मत के विषय में बहुत कुछ लिखा है। पर हमारे दुर्भाग्य से ये ग्रंथ आज हमें पूरे-पूरे नहीं मिल रहे हैं। जो भाग इन ग्रन्थों के प्राप्त हुए हैं वे भी श्रृङ्खलाबद्ध नहीं हैं।

उत्तरकालीन लेखकों में प्लूटार्क (Plutarch) तथा द्विजन (Dwijan) के ग्रन्थों के कुछ अंश हमें प्राप्त होते हैं। यूनानियों ने थियोपाम्पस की पुस्तक "आश्चर्यों" पर (On Miraculous things) तथा हर्मीपास की पुस्तक 'माजी' (On the Magi) से ही पार्सी धर्म का परिचय प्राप्त किया था। प्लूटार्क की प्रसिद्ध पुस्तक 'आइसिस और ओसिरस' (On Isis and Osiris) के अध्याय ४६ में मागी धर्म के कुछ सिद्धान्तों का विवरण पाया जाता है। भूगोल विद्या के आविष्कारकर्त्ता स्ट्रैबो (Strabbo) ने ईसा से ६० वर्ष पूर्व अपनी प्रसिद्ध 'भूगोल' पुस्तक में मागियों के आचार-विचार तथा धार्मिक सिद्धान्तों का वर्णन किया है।

सन् १८० ई० में प्रसिद्ध यूनानी यात्री 'पैसोनियस' ने अपनी पुस्तक में पार्सियों के होम का वर्णन किया है। इतिहास-लेखक '०मेथियस' ने सन् ५०० ई० में पार्सी मत का विस्तृत वर्णन किया है।

यूनानी लेखक इमेशियस ने अपनी पुस्तक 'मूल सिद्धान्त' (On Primitive principles) तथा थियोडोरस ने अपनी पुस्तक 'मागियों के सिद्धान्त' (On the Doctrines of Magi) में पार्सी धर्म का विशद विवेचन किया है।

इन यूनानी लेखकों के पश्चात् कुछ मुस्लिम लेखकों ने भी पार्सी धर्म पर क़लम चलाई है। मुस्लिम लेखकों में अरब के प्रसिद्ध यात्री मसऊद हैं। उन्होंने सन् ९५० ई० में पार्सी धर्म पर अपनी एक टीका लिखी है। सन् ११५३ ई० मे एक अन्य मुस्लिम लेखक ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक धर्म और सम्प्रदाय (On religions and creeds) में पार्सी धर्म पर अच्छी टिप्पणी लिखी है। वह लिखता है कि "पार्सी लोग एक मज़्द की पूजा करते हैं......वे पुनर्जन्म को भी मानते हैं।"

मुसलमान लेखकों के पश्चात् योरपियन लेखकों ने भी पार्सी धर्म पर काफ़ी अन्वेषण-कार्य किया है और उत्तमोत्तम पुस्तकें भी लिखी हैं। योरपियन लेखकों को पार्सी धर्म का परिचय भारत मे ही १७वीं शताब्दी मे हुआ। आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर हाइड (Hyde) ने अपनी पुस्तक Historia religion in Veterun Persarum corumque Mogorar में, जो सन् १७०० में प्रकाशित हुई, मागी सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन किया है। पर पार्सी भाषा का ज्ञान न होने के कारण उन्होंने पार्सी ग्रंथों के समझने में अनेको भूलें की हैं।

योरप के लोगों को पार्सी धर्म का अधिक परिचय अंकतिल दुपरन (Anquetil Dnpern) ने कराया। ये महाशय पार्सी धर्म के इतने जिज्ञासु थे कि सन् १७५४ ई० में स्वयं बम्बई पधारे। यहाँ उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पार्सी लोग भी जैनियों की भाँति अपनी धर्मपुस्तकें विधर्मियों को नहीं दिखलाते थे। किन्तु अंकतिल महोदय ने सूरत के दस्तूर दाराब को बहुत सा लोभ देकर उनसे पहलवी भाषा सीखी और स्वयं अवस्ता ग्रन्थ का अध्ययन किया। इस बीच में बहुत से हस्तलिखित ग्रन्थ भी प्राप्त किये। अन्त में ६ वर्ष तक लगातार भारत में पार्सी धर्म का अध्ययन करके वे स्वदेश लौट गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपनी भाषा फ्रेञ्च में अवस्ता का अनुवाद किया और अन्य हस्तलिखित पुस्तकों को, जिन्हें यहाँ से ले गये थे, पेरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में रखवा दिया।

फ्रांस के एक दूसरे विद्वान् प्रोफ़ेसर यूजितवर्नफ़ ने अवस्ता का व्याकरण तथा भाषाविज्ञान बनाया। पार्सियों की अन्य कई पुस्तकों का भी इसने अपनी भाषा में अनुवाद किया। वर्नफ़ का कार्य अंकतिल से श्रेष्ठतर था। पर उसे अधिक समय न मिला और सन् १८५२ में उसकी अचानक मृत्यु हो गई।

यद्यपि जर्मनी और डेनमार्क के विद्वानों ने भी इस ओर प्रशंसनीय कार्य किया फिर भी फ्रेंच विद्वानों का कार्य अधिक सराहनीय और उच्च कोटि का था। प्रथम जर्मन विद्वान्, जिसने अवस्ता भाषा का व्याकरण और कोष संसार के सामने रक्खा, कील (Kiel) कालिज का प्रोफ़ेसर उलासन (Olhansen) था। उसने सन् १८२९ में वेन्डीडाड के चार अध्याय छपवाये पर वह भी अपना कार्य अधूरा ही छोड़ गया। उसके कार्य की पूर्ति डेनमार्क के प्रसिद्ध विद्वान् फ्रान्सिस बाप (Francis Bopp) ने की। उसने आर्य-वंश की मुख्य-मुख्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण लिखा।

पर सबसे अधिक प्रशंसनीय कार्य लिपज़िग विश्वविद्यालय के संस्कृत प्रोफेसर हरमन ब्रुक्स ने किया। उन्होंने वेन्डीडाड याचना, विस्परद को प्रकाशित कराने के साथ-साथ अवस्ता का शब्दकोष बनाकर सन् १८५० ई० मे प्रकाशित कराया जिसकी सहायता से जर्मन विद्वानों के लिए अवस्ता का अध्ययन कुछ सरल हो गया।

अँगरेज़ी भाषा में सबसे प्रथम डा० विलसन ने पार्सी धर्म पर सन् १८४३ ई० में एक पुस्तक प्रकाशित कराई। सन् १८५१ ई० में कोपेन हेड विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर वेस्टर गार्ड ने समालोचनात्मक शैली पर 'अवस्ता' का डैनिव भाषानुवाद प्रकाशित कराया। उसी वर्ष डा० स्पीजल का पार्सी भाषा का व्याकरण प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् पार्सी धर्म पर बहुत से ग्रन्थ अँगरेज़ी में अँगरेज़ व पारसी विद्वानों ने रचकर प्रकाशित कराये।

इस समय हमें पारसी मत का ज्ञान मार्टिन हाग द्वारा लिखित अँगरेज़ी की पुस्तकों से अधिक होता है। मार्टिन हाग साहब सन् १८५८ से १८६६ ई० तक भारत में बम्बई प्रान्त के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर-पद पर रहे हैं। उन्होंने 'याचना' गाथाओं का पता लगाया और बहुत से अन्य हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज की और सारे भारत में घूम-घूमकर "वेद और अवस्ता" विषय पर अनेकों व्याख्यान दिये।

हाग की मृत्यु के बाद जेम्स डेमस्टर और एल० एच० मिल्स ने 'अवस्ता' का अनुवाद अँगरेज़ी में किया। उसी समय सन् १८८० में पहलवी भाषा की मूल पुस्तकों का अनुवाद ई० डबल्यू० वेस्ट ने आरम्भ किया और सन् १८९८ में पूरा किया।

पिछले अध्यायों में आप पढ़ चुके हैं कि स्वयं पारसियों ने भी अपने धार्मिक साहित्य की बाहरी तूफ़ानों से किस प्रकार रक्षा की है। सिकन्दर द्वारा पार्सीपोलिस नगर की बरबादी और उसमें रक्खे हुए अवस्ता ग्रन्थ के नाश की कथा पीछे आ ही चुकी है। शासनवंश के राजाओं का प्रयास, धार्मिक साहित्य की खोज तथा अन्वेषण की कहानी भी पाठक पढ़ ही चुके हैं। इस्लामी तलवार ने पार्सी धर्म और साहित्य को जो ठेस पहुँचाई वह तो इतिहास की सच्ची घटना है जो किसी से छिपी नहीं। फिर भी पार्सी पुरोहितों ने अपने साहित्य की रक्षा में जो व्यक्तिगत प्रयत्न किये वे प्रशंसनीय हैं। इस प्रकार का सबसे सराहनीय कार्य ईरान के प्रसिद्ध पार्सी पंडित 'आदरपाद आदर फ़ाबाक फ़रुख़जदन' ने किया था। उन्होंने उस समय के प्राप्त ग्रन्थों को बड़ी कठिनाइयों से सुरक्षित रक्खा।

पर वे पार्सी लोग जो इस्लामी तलवार के भय से ईरान से भागकर भारत में आकर बसे केवल अपने प्राणों को लेकर आये। उन्होंने अपने देश-त्याग के साथ साहित्य को भी वहीं छोड़ा। किन्तु हर्ष और गौरव की बात यह है कि पार्सी धर्म केवल पुस्तकों से सीमित न था। वह तो जीवन-धर्म था। प्रत्येक पार्सी वृद्ध, युवक, बालक, पुरुष एवं स्त्री के जीवन का स्वाभाविक धर्म शताब्दियों से बना हुआ था। इसलिए यहाँ

आकर भी वे अपने पवित्र धर्म पर आरूढ़ रहे। यद्यपि अब वह धर्म केवल कुछ रीतियों में ही सीमित रहा।

इस्लामी विजय के एक सहस्र वर्ष बाद भारत के पार्सियों ने ईरान के बचे-खुचे सहधर्मियों से अपना सम्बन्ध जोड़ा और धार्मिक साहित्य प्राप्त किया।

यहाँ मैं एक भारतीय पार्सी दस्तूर नरसिंह धवल के साहस की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। उन्होंने लगभग ईसा की १४वीं शताब्दी में पार्सी धर्म के कई ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद करके सुरक्षित रक्खा। उनमें से कुछ ग्रन्थ अब मिले हैं। वे हैं (१) शिकन्द नुमानी, (२) मन्यु खुर्द, (३) याचना के कुछ भाग। दूसरे दस्तूर हैं कै खुसरो बहराम जिन्होंने कई धार्मिक ग्रन्थों की रक्षा की थी।

सन् १७२० ई० में ईरान के एक दस्तूर जमस्प 'विलायती' ने भारत में आकर नवसारी (सूरत) और भड़ौच के दस्तूरों को ईरान में प्रचलित मज़्दानी आचारशास्त्र का अविकल ज्ञान कराया। दस्तूर विलायती के आगमन से पार्सियों का ध्यान पञ्चाङ्ग की ओर भी आकृष्ट हुआ और सन् १७४५ ई० की १७ जून (पार्सी वर्ष १११४ मास ६ दिन २६) को पार्सी पञ्चाङ्ग में कुछ परिवर्तन किया गया। यह परिवर्तित पञ्चाङ्ग क़दीमी या प्राचीन पञ्चाङ्ग के नाम से विख्यात हुआ। यह पञ्चाङ्ग प्राचीन ईरानी पञ्चाङ्ग के अनुकूल बनाया गया था। इसी समय कुछ छोटे-छोटे अन्य सैद्धान्तिक परिवर्तन भी हुए। इन परिवर्तनों ने भारतीय पार्सियों को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया।

(१) जिन्होंने परिवर्तन स्वीकार कर लिया वे क़दीमी पार्सी कहलाये और (२) जिन्होंने परिवर्तन नहीं स्वीकार किये वे 'शाहंशाही' कहलाये। भारत में दूसरी श्रेणी के अर्थात् शाहंशाही पार्सी अधिक हैं।

पञ्चाङ्ग का प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गया। यह 'क़बीसा' (मलमास) प्रश्न के नाम से विख्यात हुआ। शाहंशाहियों का कथन

है कि ईरानी पार्सी प्रति १२० वर्ष के बाद मलमास का एक मास जोड़ना भूल गये हैं। यह विवाद का विषय बहुत दिनों तक चलता रहा।

सन् १८४३ ई० में अस्पन्दियरजी फ्रामजी ने 'यस्न' का गुजराती भाषा में अनुवाद प्रकाशित कराया जिससे कि भारतीय पार्सियों में धार्मिक स्वाध्याय की रुचि पुनः उत्पन्न हुई क्योंकि अब भारतीय पार्सियों की भाषा अधिकतर गुजराती बन चुकी है।

दस्तूर पिशुतन जी १९वीं शताब्दी के प्रसिद्ध पार्सी लेखक हुए हैं। उन्होंने सन् १८४८ ई० में एक हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर पहलवी भाषा में 'वज़र कर्द दीनी' नाम की पुस्तक प्रकाशित कराई। सन् १८५३ ई० में कारनाम की 'आदर्शरी पापकान' पुस्तक का पहलवी से गुजराती में अनुवाद प्रकाशित हुआ। सन् १८७१ ई० में पिशुतन जी ने पहलवी भाषा का व्याकरण गुजराती में प्रकाशित कराया। सन् १८७४ ई० में उन्हीं के प्रयत्न से 'दिनकर्द' पुस्तक की मूल सहित गुजराती टीका प्रकाशित हुई।

इसी वर्ष कावसजी ईदलजी ने 'वन्दीदाद' का गुजराती भाषानुवाद प्रकाशित कराया। १९वीं शताब्दी के अन्त में बम्बई के सुप्रसिद्ध दस्तूर श्री जामास्पजी मिनुचिहरजी के भगीरथ प्रयत्न से पहलवी भाषा का एक बृहत् कोष तैयार किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सहस्रों वर्षों से छिपे हुए पार्सी ग्रन्थों की खोज और अध्ययन का कार्य योरप, ईरान और भारत के विभिन्न विद्वानों ने किया और उनके सतत उद्योग से अब वे ग्रन्थ शिक्षित संसार के सामने आने लगे हैं पर अभी तो 'सेर में एक पूनी भी नहीं कती'। अभी तो महान् कार्य शेष है। संसार की अन्य प्रचलित भाषाओं को जाने दीजिए। सबसे अधिक आवश्यकता तो यह है कि पार्सी धर्म के ग्रन्थों का अनुवाद भारत के विभिन्न प्रान्तों की भाषाओं में किया जावे। मेरी प्रार्थना है कि पार्सी दस्तूर अपने प्राचीन कर्तव्य को न भुलावें और इस ओर अपना क़दम बढ़ावें। पार्सी साहित्य के प्रेमियों और शुभ-चिन्तकों की कमी न होगी।

हिन्दी भाषा में यह मेरा प्रथम प्रयत्न है कि इस छोटी पुस्तक को पाठको के सामने प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ। इस पुस्तक में केवल मैने पार्सी धर्म के कुछ मूल सिद्धान्तों का ही विवेचन किया है। यद्यपि इससे पूर्व श्री पं० गङ्गाप्रसादजी एम० ए० चीफ़ जज टेहरी राज्य ने 'धर्म के आदिस्रोत' में पार्सी धर्म का विशद विवेचन आलोचनात्मक दृष्टि से किया था और महात्मा मुंशीराम (बाद के स्वामी श्रद्धानन्द) ने पार्सी मत और वैदिक धर्म नाम की छोटी-सी पुस्तक लिखकर हिन्दी जनता को लाभ पहुँचाया है पर फिर भी ये सब पुस्तकें अभी अपर्याप्त ही हैं।

——

१७—भविष्य

वर्तमान समय में भारतवर्ष के पार्सी तथा फ़ारस (ईरान) के 'गवार' जाति के लोग ज़रथुस्ती मत के अनुयायी हैं। इनका धर्मग्रन्थ 'ज़न्दावस्ता' है। इस समय यह ग्रन्थ हमें अपूर्ण रूप में मिलता है। परन्तु जितने भी अंश इस बृहत् ग्रंथ के प्राप्त हैं वे धार्मिक इतिहास के लिए अमूल्य निधि हैं। संसार के धर्मों में भारत के वैदिक धर्म को छोड़कर दूसरा अत्यन्त प्राचीन धर्म पार्सी या ज़रथुस्ती धर्म ही है। यह धर्म किसी समय संसार के अति विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित था। पश्चिम में भूमध्यसागर से लेकर पूर्व में सिन्ध नदी तक तथा उत्तर में कास्पियन सागर से लेकर दक्षिण में अरब सागर और लाल सागर तक के समस्त देशों में—जिन्हें आजकल एशिया माइनर, अरब, पैलिस्टाइन, सीरिया, फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान तथा बलोचिस्तान कहा जाता है—पार्सी धर्म का बोलबाला था। यदि मैराथन, प्लोरिया तथा सालमिस के युद्धों में ग्रीकों द्वारा पार्सी पराजित न होते तो यह धर्म समस्त सभ्य संसार में फैल जाता।

प्राचीन 'अवस्ता' या 'ज़न्दावस्ता' ग्रंथ बहुत बड़ा ग्रंथ था। इसमें बारह सौ अध्याय थे। पहलवी साहित्य में स्थान-स्थान पर यह कहा

गया है कि विश्वविजयी सिकन्दर के आक्रमणों के बाद जब फ़ारस की दुर्दशा हुई तो 'अवस्ता' के अनेक अंश नष्ट हो गये। अवस्ता के वर्तमान स्वरूप को देखकर भी यह अनुमान होता है कि यह किसी बड़े ग्रन्थ का खण्डमात्र है। पहलवी भाषा के 'दीनोसिद' और फ़ारसी भाषा के 'रुबाइयात' नामक ग्रन्थों में अवस्ता के प्रथम खण्ड की सूची व उसका विस्तृत वर्णन दिया गया है। उक्त ग्रंथों के अवलोकन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'अवस्ता' केवल एक धर्मग्रन्थ ही नहीं था, वरन उसमें सभी पार्थिव विषयों का समावेश था। उपलब्ध 'अवस्ता' २१ नास्कों (अध्यायों) में विभक्त है। इन २१ नास्कों में निम्न विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

१—धर्म, २—धर्मानुष्ठान, ३—तीन प्रधान प्रार्थनाओं की व्याख्या, ४—सृष्टिज्ञान, ५—ज्योतिषशास्त्र, ६—अनुष्ठान और उसका फल, ७—दस्तूरों के गुण व कर्त्तव्य, ८—नीतिशास्त्र, ९—धर्मानुष्ठान सम्पादन-विधि, १०—राजा गुस्तास्प का इतिहास, ११—सांसारिक तथा धार्मिक कर्त्तव्य, १२—ज़रथुस्त के जन्म से पूर्व का मानव-जाति का इतिहास, १३—ज़रथुस्त के जन्म की भविष्यवाणी, १४—अहुर और देवदूतों की उपासना-विधि, १५—धर्माधिकरण और व्यवहारशास्त्र, १६—दीवानी और फ़ौजदारी के क़ानून, १७—साधारण धर्म, १८—दायभाग, १९—प्रायश्चित्त, २०—पुण्य तथा पाप, और २१—ईश-प्रार्थना।

स्वर्ण-युग—महात्मा ज़रथुस्त के आविर्भाव से (ईसा से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व) सिकन्दर की फ़ारस-विजय तक (ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व) तक के काल को पार्सी धर्म का उन्नति या स्वर्ण-काल कह सकते हैं। इस समय पार्सी धर्म की विजय-पताका दिग्दिगन्त में चहुँ ओर फहरा चुकी थी। ईरानी सम्राट् विशतास्प के ज़रथुस्ती धर्म स्वीकार कर लेने के बाद इस धर्म की वृद्धि उत्तरोत्तर होती गई। राजा के पश्चात् रानी तथा मंत्रियों ने इस धर्म की दीक्षा ली। युवराज अस्पन्दियार ने पड़ोसी राजाओं से धार्मिक युद्ध किये। इसके फलस्वरूप तूरान, अफ़ग़ानिस्तान, बैबीलोन

आदि देश पार्सी (ज़रथुस्ती) धर्म के अनुयायी हो गये। इतिहास-लेखक "हवारी" का कहना है कि सम्राट् गुस्तास्प ने ज़रथुस्ती धर्म के प्रचारकों को अनेक सुविधाएँ दी थीं और अवस्ता ग्रन्थ की एक प्रति सुवर्णाक्षरों में लिखवाकर 'पर्सीपोलिस' के क़िले में रखवा दी थी और दूसरी प्रति समरक़न्द के अग्निमन्दिर में रखवा दी थी। ईसा से ३२९ वर्ष पूर्व सिकन्दर ने फ़ारस पर जब आक्रमण किया तो उसने 'पर्सीपोलिस' के क़िले को जलवा दिया जिससे 'अवस्ता' की प्रति जल गई। दूसरी प्रति को ग्रीक लोग समरक़न्द से अपने साथ लेते गये। इस प्रकार दोनों प्रामाणिक प्रतियाँ सभ्य संसार के लिए लुप्तप्राय हो गईं।

अवनति-युग—सिकन्दर की विजय से ज़रथुस्ती धर्म को बड़ी ठेस पहुँची। उसका बढ़ता हुआ प्रभाव नष्ट हो गया। सिकन्दर-विजय से लेकर ईसा की ७वीं शताब्दी तक एक सहस्र वर्ष का काल ज़रथुस्ती धर्म के लिए अवनति का युग था।

इस युग में ज़रथुस्ती धर्म का प्रभाव शिथिल हो रहा था। इस काल में सेल्यूकस और पार्थियनवंशी ग्रीक राजाओं ने 'अवस्ता' की दूसरी प्रति के अवशिष्ट भाग प्राप्त किये। इन भागों को पार्सियों ने बड़े उद्योग से सुरक्षित रक्खा। कुछ भागों को पुरोहितों (दस्तूरों) ने कण्ठस्थ किया।

ईसा की तीसरी शताब्दी में अवस्ता के बचे-खुचे भागों को आर्सकिड वंश के अन्तिम सम्राट् ने पुनः संगृहीत कराया। ख़ुसरो की घोषणा से विदित होता है कि शासन वंश के सम्राट् 'अर्दशर' (२२६-२४० ई०) तथा उनके पुत्र 'बलकस' ने इस कार्य का सम्पादन उत्साह से कराया। राजा बलकस ने अवस्ता के कंठस्थ भागों को लिपिबद्ध भी कराया। सन् ३०९ ई० से ३८० ई० तक राजा शापुर द्वितीय के राजत्वकाल में 'अवस्ता' ग्रन्थ का संशोधन राजमंत्री द्वारा कराया गया।

इस काल में भी पार्सी धर्म लालसागर से कास्पियन सागर तक तथा भूमध्यसागर से सिन्ध नदी तक के देशों में फैला हुआ था। इस काल

में पार्सी धर्म का वह घाव जो सिकन्दर के आक्रमण से पैदा हो गया था लगभग अच्छा हो गया था।

अँधेरा युग—पर सिकन्दर के आक्रमण या उसके युग की लापरवाही से पार्सी धर्म या पार्सी साहित्य की जो दुर्दशा हुई उससे भी अधिक क्षति मुसलमानों के आक्रमण और क़ुरान धर्म-प्रचार से हुई। सन् ६५१ ई० के इस्लामी आक्रमण ने ईरान में ज़रथुस्ती धर्म का संहार किया। ईरानियों को इस्लाम की चमकती हुई तलवार के सामने अपना सर झुकाना पड़ा। जिन लोगों ने नया धर्म (इस्लाम) स्वीकार नहीं किया उन्हें उसका मूल्य चुकाना पड़ा। उन्होंने या तो अपना सर दिया या वतन छोड़कर अन्य देशों को भागे। उनके धर्म-ग्रन्थों को मुसलमानों ने अग्निदेव के अर्पण कर दिया। इस प्रकार रहा-सहा पार्सी साहित्य भी सदैव के लिए अप्राप्य हुआ। फिर भी उन पार्सी दस्तूरों ने, जो विदेशों में भाग गये, पार्सी साहित्य के कुछ अंश सुरक्षित रक्खे। आज हमें वे ही अंश देखने को मिलते हैं।

जान लेकर भागे हुए ईरानी अधिकतर भारत में आये और पश्चिमी किनारे पर बस गये। आज उनकी जन-संख्या सन् १९४१ की सरकारी रिपोर्ट के आधार पर डेढ़ लाख है। फ़ारस में रहनेवाले ज़रथुस्तियों की संख्या कुल लगभग बारह हज़ार है।

सातवीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक का समय पार्सी धर्म का अँधेरा-युग है। इस युग में ज़रथुस्ती धर्म और ज़रथुस्तियों पर विपत्ति के पहाड़ गिरे।

उत्थान-काल और भविष्य—सत्रहवीं शताब्दी से पार्सी धर्म का पुनरुत्थान प्रारम्भ होता है। दो शताब्दियों तक लगातार पार्सी साहित्य की खोज अनेकों पाश्चात्य विद्वानों ने की जिसके परिणामस्वरूप हमें आज 'अवस्ता' ग्रन्थ के थोड़े-से भाग प्राप्त हुए हैं। इस समय तक पार्सी धर्मग्रन्थों का अनुवाद प्रायः योरप की सभी बड़ी-बड़ी भाषाओं में हो चुका है। कुछ ग्रन्थों का अनुवाद गुजराती भाषा में भी हुआ है।

पर अभी आवश्यकता है कि भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में पार्सी धर्म ग्रन्थों का अनुवाद किया जावे।

पार्सी धर्मग्रन्थों की छानबीन अब तो भारतीय विद्वानों को ही करनी चाहिए क्योंकि पार्सी अब ईरानी नहीं हैं। अब तो वे शुद्ध भारतीय हैं। आज भारत के राजनैतिक, सामाजिक एवं व्यापारिक कार्यों में पार्सी लोग दिलचस्पी से आगे बढ़ रहे हैं। धार्मिक जागृति की लहर भी उनमें पैदा हो गई है। सन् १८५१ ई० में बम्बई नगर में "रहनु-माये मज़्द यस्नी सभा" की स्थापना भारत के नररत्न एवं पार्सी समाज के मुखिया सुविख्यात श्री दादाभाई नौरोजी के कर-कमलों द्वारा हुई, जिसका उद्देश्य धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों के साथ-साथ ज़रथुस्ती सिद्धान्तों का प्रचार करना भी है।

वर्तमान ईरान देश में भी प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार की भावना युवक-हृदय सम्राट् श्री सैयद रज़ाशाह पहलवी के पवित्र हृदय में जागृत हो उठी है। उन्होंने अभी यह घोषणा की है कि "अबसे फ़ारस का नाम बदलकर ईरान रक्खा जावे" ('गङ्गा' माघसे १९९१)। इतना ही नहीं, वे और भी आगे बढ़े हैं। उनके कार्यों का प्रभाव भारत के विख्यात बौद्ध भिक्षु राहुल साकृत्यायन ने अपने व्क्तव्य में जो ईरान-भ्रमण के बाद लौटने पर दिल्ली में दिया था, इस प्रकार प्रकट किया था,

"Religious fanaticism in Iran, the Bhikshu declared in steadily becoming a thing of the past. Evidence of this, he said, is to be found in the fact that picnics are becoming more common on Fridays when the people used to be at the mosques for saying their payers.

There is a concerted move, the Bhikshu added to revive the ancient Iranian culture and to wipe out Arabic influences. (Hindustan Times Oct. 1935.)

अर्थात् ईरान में धार्मिक कट्टरता लुप्त हो रही है। इसका प्रमाण यह है कि पहले शुक्रवार (जुमा) के दिन लोग मसजिदों में जहाँ नमाज़ पढ़ने के लिए इकट्ठे होते थे, अब उद्यान-भोज रक्खे जाते हैं। अरबी प्रभाव दूर करने तथा प्राचीन ईरानी संस्कृति का पुनरुद्धार करने का सङ्गठित आयोजन किया जा रहा है। यही एक आशा की किरण है जो भविष्य में पार्सी धर्म को पुनः सभ्य संसार के सामने प्रकाश में लावेगी।

ज़रथुस्ती पार्सी धर्म का द्वार अब बाहर से आनेवालों के लिए बिलकुल बन्द है। आवश्यकता है उसे खोलने की और मिशनरी भाव पैदा करने की जिससे कि नये लोग पुनः इस धर्म में दीक्षित हो सकें और ज़रथुस्त के अमृतमय उपदेश का पान कर सकें।

१८—भूत और वर्तमान

भारत के किनारे पार्सियों का प्रथम पदार्पण ईसा के किस सन् में हुआ यह बतलाना कठिन है। यह तो इतिहास के विद्यार्थियों के लिये अन्वेषण का एक विषय है।

सन् १६६३-९४ ई० में शहरयार जी दादाभाई भरूचा नाम के एक पार्सी विद्वान् ने प्राचीन पार्सियों द्वारा लिखी हुई संस्कृत की पुस्तकों की खोज की थी। उस खोज में उन्हें एक पार्सी पण्डित द्वारा बनाये हुए संस्कृत के १६ श्लोक प्राप्त हुए। इन श्लोकों को बनानेवाला "मोवेद नर्योसंघ धवल" या "अको अंध्यारु" नाम का पण्डित था। ऐसा कहा जाता है कि यह विद्वान् पार्सियों के उस पहले क़ाफ़िले के साथ आया था जो ईरान से भागकर समुद्री मार्ग द्वारा भारत के पश्चिमी तट पर आकर बसा। उस समय बम्बई प्रान्त में 'सज्जनकर्श' (आधुनिक संजान) नाम का एक राज्य था। जयदेव राणा उस समय वहाँ का

शासक था। इन श्लोकों के द्वारा नर्योसंघ धवल ने अपना (पार्सियों का) परिचय राजा को देकर उसके राज्य में बसने की आज्ञा प्राप्त की थी। ये श्लोक "क़िस्सा संजान" नाम की गुजराती पुस्तक में भी दिये गये हैं।

हम इन श्लोकों को बहराम फ़ीरोज़शाह भरूचा-कृत "हालनी पारसी क़ौम" नामक गुजराती ग्रंथ से लेकर पाठको की जानकारी के लिए यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। साथ ही उनका भावार्थ भी लिख दिया है ताकि हर एक को समझने में आसानी हो।

इन श्लोकों के मूल पाठ में भिन्न-भिन्न पुस्तको में कुछ शब्दो का अन्तर पाया जाता है। हमारा पाठ 'भरूचा' के अनुकूल ही है।

सूर्यं ध्यायन्ति ये वै हुतवहमनिलं भूमिमाकाशमाद्यं
तोयं ये पंचतत्त्वं त्रिभुवनसदनं न्यासमंत्रैस्त्रिसंध्यम् ॥
श्री होर्मज्दं महेशं बहुगुणगरिमाणं तमेकं कृपालुं
गौरा धीराः सुवीरा बहुबलनिचयास्ते वयं पारसीकाः ॥१॥

अर्थात् सूर्य तथा तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) के अस्तित्व के कारणों पाँचतत्त्वों (अग्नि, वायु, भूमि, आकाश तथा जल) की तीनों संधिकालो में स्तुति करनेवाले और नाना गुणों से युक्त, दयालु अहुरमज़्द की प्रशंसा करनेवाले हम पार्सी लोग हैं।

स्नाने ध्याने सुपाठे हुतवहहवने प्राशने माल्यमौत्रे
शास्त्रोक्तं सप्त मौनं निदधति नृवराः, सर्वदा सर्वदा नः।
नानाधूपैः सुपुष्पैर्वरफलबहुलैः पूजयंत्यग्निमार्याः।
गौरा धीराः सुवीरा बहुबल निचयास्ते वयं पारसीकाः ॥२॥

अर्थात् स्नान, ध्यान, सुपाठ, हवन, भोजन, मल तथा मूत्रत्याग करते समय मौन धारण करनेवाले, गौरवर्णवाले, धीर, वीर तथा बलवान् हम पार्सी लोग हैं।

रम्यं वस्त्रं पवित्रं कवचगुणमयं कंचकुं ये धरन्ते
युक्तामुर्णां सुकुस्तीं मृदुमुखसमितां मेखलां ये स्वकट्या ॥
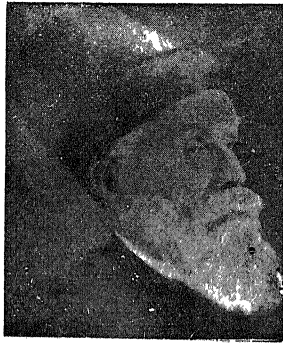
भारतीय पारसी समाज के सुधारक नररत्न
श्री दादाभाई नवरोजी

मूर्द्धानं वस्त्रगुप्तं पटयुगलतले छादयं तीह नित्यं ।
गौरा धीराः सुवीरा बहुबलनिचयास्ते वयं पारसीकाः ॥३॥

अर्थात् कवच के गुणों से युक्त, सुन्दर एवं पवित्र कञ्चुक (सूई) धारण करनेवाले, कटि मे ऊनी कुश्ती (यज्ञोपवीत) धारण करनेवाले, दो वस्त्रों से मस्तक ढकनेवाले और धीर वीर तथा बलिष्ठ हम पार्सी लोग हैं।

यन्मांगल्ये विवाहे कथितशुभदिने सोत्सवं गीतवाद्यं
श्रीखंडं चन्दनाद्यं वपुषि युवतयो धारयंतीह येषाम् ।
स्वाचारा या पवित्रा बहुगुणविषयो रम्यशास्त्रार्थयुक्ता
गौरा धीताः सुवीरा बहुबलनिचयास्ते वयं पारसीकाने ॥

अर्थात् जिनकी स्त्रियाँ मंगल और विवाहादि शुभ दिनो में गीत और वाद्य से उत्सव करनेवाली और श्रीखंड तथा चन्दन आदि धारण करने वाली होती हैं ऐसे पवित्राचार वाले, अनेकों गुणों से युक्त, शास्त्रों के अर्थ समझनेवाले गौर, धीर एवं वीर हम पार्सी लोग हैं।

येषां गेहेषु रम्यं मधुररसमयं चान्नदानादि नित्यं
कासारं कूपवापीजल फल-रचनं दानमेभिः प्रकारैः ।
वस्त्राद्यं द्रव्यदान ददति गुणवतां सर्वदा याचकानां
गौरा धीराः सुवीरा बहुबलनिचयास्ते वयं पारसीकाः ॥५॥

अर्थात् जिनके घरों में वापी, कूप और तड़ाग की भाँति सदैव गुणी याचकों को अन्न, वस्त्र तथा द्रव्य का दान किया जाता है ऐसे हम गौर, धीर और सुवीर पार्सी लोग हैं।

यादृग् हर्षो विषादः सुखमसुखमहो ज्ञानमौने च यादृक्
धर्माधर्मौ च यादृग् विमलकुलकृतौ यादृग् आरोग्यरोगौ ।
ऊर्ध्वाधस्तौ च यादृग् द्युतितिमिरमयौ सृष्टिसंहारकारौ
येषामुक्तौ मतौ द्वौ निरविधिपुरुषौ ते वयं पारसीकाः ॥६॥

अर्थात् पुरुष के जोड़े की भाँति जिसके मन में हर्ष और विषाद, सुख और दुःख, ज्ञान और अज्ञान, धर्म और अधर्म, पवित्रता तथा अपवित्रता,

रोग तथा आरोग्य, प्रकाश तथा अँधेरा, उत्पत्ति तथा नाश आदि सृष्टि-रचना के जो द्वन्द्व हैं, मौजूद हैं, ऐसे गौर, धीर एवं वीर हम पार्सी लोग हैं।

गोमूत्रैर्मंत्रपूतैः शिरवदनसमितैस्त्रितयं पानशुद्धि
बाह्यांतःस्नान मुक्तं तदनुपरिवृता मध्यदेशे च मुद्रा।
मुद्रां त्यक्त्वा न निद्रा न च जपहवने साधुपूजादि कार्यं
येषां मार्गो हि सततमभिमतस्ते वयं पारसीकाः॥ ७॥

अर्थात् मंत्र से पवित्र बनाये हुए गोमूत्र को पोत कर और पीकर जो सिर और बदन की शुद्धि करते हैं तथा जो स्नान करने के बाद कमर में मुद्रा (कुश्ति) धारण करते हैं, कुश्ति को खोलकर जो न सोते हैं, न जप, हवन आदि उत्तम कार्य करते हैं ऐसे हम पार्सी लोग हैं।

वेश्यास्त्रीभिर्न संगः पितृषु विपुलता श्राद्धमग्निश्च सेव्यः
नो मांसो यज्ञवर्ज्यः प्रसवमधिशया जातपुष्पा च नारी॥
शुद्धं वैवाहकार्यं भवति न च शुचिर्भर्तृहीना पुरंध्री
येषां आचार इत्थं प्रतिदिनमुदितस्ते वयं पारसीकाः॥ ८॥

अर्थात् वेश्यागमन न करनेवाले, पितरों का श्राद्ध एवं अग्नि की पूजा करनेवाले, यज्ञ में वर्जित मांस को न खानेवाले (कुछ लोगों ने "न मांसो यज्ञवर्ज्यः" का अर्थ यह किया है कि यज्ञ के सिवा और समय में मांस न खानेवाले) हम पार्सी हैं। हमारी सुकोमल स्त्रियाँ प्रसवकाल में भूमि पर लेटती हैं। पतिविहीन (विधवा) नारी विवाह आदि शुभ कार्यों में पवित्र नहीं मानी जाती है।

येषामेवांगनाया ऋतुसमयदिनाः सप्तरात्रौ भवेयुः
पूताः सूताश्च मासे प्रसवनसमयाद्देहशुद्धास्तथैव।
रम्याचारेण गौरा नवकनकनिभा वीर्यवन्तो बलिष्ठाः
पूतात्मानोपि नित्यं विकसितवदनास्ते वयं पारसीकाः॥ ९॥

अर्थात् हम ऐसे पवित्र हैं कि हमारी स्त्रियाँ ऋतु-काल में सात दिन में पवित्र होती हैं और प्रसवकाल में एक मास में पवित्र होती हैं। ऐसे

पवित्र आचारवाले, गौर वर्णवाले, वीर्यवान्, बलवान् और प्रसन्नवदन हम पार्सी लोग हैं।

काष्ठैः षण्मासशुष्कैरगुरुमलयजैः काष्ठकर्पूरधूपैः
होमः स्यात् पंचकालं प्रतिदिनमुदितैरुच्चरैर्मंत्रयुक्तैः।
निर्वाणाग्निस्तु सूर्यावृतघनरुचिरे नो युगान्तेपि येषां
सत्यन्यायैः कनिष्ठा न च युवतिरतास्ते वयं पारसीकाः ॥१०॥

अर्थात् छः मास के सूखे काष्ठ, अगर, चन्दन, कपूर और धूप आदि से प्रतिदिन पाँच बार मंत्रों सहित हवन करनेवाले और सुन्दर बादलों से घिरे हुए सूर्य की भाँति अग्नि को मन्दिरों में सदैव रखनेवाले, सत्य और न्याय में निष्ठा रखनेवाले और युवतियों से अलिप्त रहनेवाले हम पार्सी लोग हैं।

ऊर्ण्यायामुद्धृतायामतिभवति फलं जाह्नवीस्नानतुल्यं
योषाणां चैव पुंसां धनगुणरचितां हेमवर्णां च रम्याम्।
योग्याकारां विशालां गुरुजनवचनैः मेखलां धारयन्ते
शास्त्रोक्तां श्रोणिदेशे हृदि कवचसमां ते वयं पारसीकाः ॥११॥

अर्थात् गङ्गास्नान के समान फल देनेवाली, धन और गुण से रचित, श्वेत एवं सुन्दर, उचित आकार की, शास्त्रविधि से, गुरुजनों की आज्ञा से हृदय के लिए कवच-तुल्य ऊनी मेखला (कुष्टि) कटि प्रदेश में स्त्री और पुरुष दोनों धारण करनेवाले हम पार्सी लोग हैं।

पानीयं व्योमचंद्रं हुतवहमनिलं भूमिमादित्यमेवं
श्रीहोर्मिज्दं च दातारमचलममरं चेतसा चिन्तयन्ति।
नित्यं ये न्यासपाठं विदधति जयदं धर्मदं कामदं च
आहारे मौनमादौ तनुशुचिकरणे ते वयं पारसीकाः ॥ १२ ॥

अर्थात् जल, आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आदित्य, चन्द्र तथा अहुरमज्द को हृदय से चिन्तन करनेवाले, जय देनेवाले, धर्म देनेवाले तथा काम देनेवाले, मन्त्रों का पाठ करनेवाले, भोजन और स्नान में मौन रहनेवाले हम पार्सी लोग हैं।

चत्वारिंशद्दिनानि प्रचरति न वधूः पाककार्ये प्रसूता
मौनाढ्या स्वल्पनिद्रा जपनविधिरता स्नानसूर्यार्चनेषु।
ध्यायंते चैव नित्यं मरुदनलधरातोयचंद्रार्कमज्दात्
येषां वर्णे विहीनाः सततमभियतास्ते वयं पारसीकाः ॥ १३ ॥

अर्थात् जिसकी प्रसूता नारी चालीस दिन तक पाक (भोजन पकाना)-कार्य से दूर रहती है, स्वल्पनिद्रावाले, स्नान जप एवं सूर्यार्चन में मौन रहनेवाले, नित्य वायु अग्नि जल भूमि चंद्र सूर्य तथा मज़्द का ध्यान करनेवाले तथा जिसके धर्म में विधर्मी को दीक्षा न दी जाती हो ऐसे हम पार्सी लोग हैं।

प्रायश्चित्तं पवित्रं विदधति दुरितक्षालनार्थं च दोषे
गोमूत्रं स्नानपूर्वं परिमितदिवसैः शुद्धिश्च तत्कृतां स्यात्।
नित्यं नित्यं गुरूणां सुवचनकरणं कल्मषक्षालनार्थं
येषामाचार एवं प्रतिदिनमुदितस्ते वयं पारसीकाः ॥ १४ ॥

अर्थात् अपराध हो जाने पर पाप को दूर करने के लिए गुरुजनों के कथन के प्रमाण से पवित्र प्रायश्चित्त करनेवाले और प्रतिदिन स्नान से पूर्व गोमूत्र से शुद्धि करनेवाले हम पार्सी लोग हैं।

पूर्वाचार्यप्रबद्धैर्विरचितरुचिरैर्मोक्षमार्गप्रदात्री
संस्कारैः संस्थितानां विरचितविधिना कथ्यते व्योमदाया।
सर्वेषां च त्रयाणां दहनवसुमतीभास्कराणां च पूजा
शुद्धे रम्याच तस्याः प्रगदितमहिमास्ते वयं पारसीकाः ॥ १५ ॥

अर्थात् पूर्व के आचार्यों द्वारा रचित एवं कथित मोक्ष-मार्ग देनेवाली संस्कारों से बनाई हुई विधि से अग्नि, भूमि और सूर्य की पूजा करनेवाले हम पार्सी लोग हैं।

श्रीहोर्म्मज्दः सुखं वर्धयतु जयदाता पुत्रपौत्रादिवृद्ध्यै
दाता श्रीआतशोऽयं भवतु भवतां पापनाशाय नित्यम्।
श्रीसूर्यः सानुकूलो बहुतरफलदो न्यासजाप्याय पंच
ते सर्वे पारसीकाः स्वशुभविजयिनो यान्तु मान्यं च नित्यम् ॥१६॥

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में पार्सियों ने राजा के लिए शुभ कामना प्रकट की है और उत्तरार्द्ध में राजा का पार्सियों के प्रति आशिष-वचन कहा गया है।

अर्थात् जयदाता श्री अहुरमज़्द आपके पुत्र और पौत्रों की सुख-वृद्धि करें और यह अग्नि नित्य आपके पापों का नाश करनेवाली हो।

हे पारसी लोगो, सूर्य तथा पंचतत्त्व (अग्नि, जल, भूमि, आकाश, वायु) तुम्हारे अनुकूल हों और तुम विजयी हो और सम्मान प्राप्त करो।

इन १६ श्लोकों के द्वारा पाठकों को पार्सियों और उनके धर्म के विषय में काफ़ी जानकारी हो गई होगी। पर एक बात का स्मरण रखना चाहिए कि इन श्लोकों में पार्सी-समाज का जो चित्र खींचा गया है वह कम से कम आज से एक हज़ार वर्ष पूर्व का है। तब के और अब के पार्सी समाज में अवश्य ही काफ़ी अन्तर हो गया है। यह अन्तर भारत की नई जलवायु और नये वातावरण में होना स्वाभाविक ही था।

नये देश और नई परिस्थिति में रहकर भी इतने लम्बे समय के बाद भी पार्सी लोग अपने को पृथक् और सुरक्षित रख सके हैं, इसका कारण केवल यही है कि वे अपनी घरेलू बातों में अपरिवर्तनवादी हैं।

उनके बाह्य जीवन में कितना ही परिवर्तन क्यों न हो गया हो पर उनका आन्तरिक जीवन आज भी लगभग वैसा ही है जैसा ईरान में था। सब से बड़ा परिवर्तन जो पार्सियों में हुआ है वह है भाषा का। भारत में आकर उन्होंने भारत के उस प्रान्त गुजरात की भाषा को अपनी मातृ-भाषा बना लिया है जहाँ वे सबसे पहले आकर बसे थे। आज पार्सियों की मातृभाषा अवस्ता या ईरान की भाषा नहीं है, किन्तु शुद्ध गुजराती भाषा है। खाने-पीने में उन्हें न तो पहले ही कोई परहेज़ था और न अब है। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई किसी के यहाँ भी बिना सङ्कोच वे खाना खा सकते हैं। उनका खाना भी वही है जो गुजरात के रहनेवाले गुजरातियों का। यद्यपि उनके मत में गोश्त खाना मना है पर अब कुछ अँगरेज़ी पढ़े-लिखे पार्सी गोश्त खाने में भी परहेज़ नहीं करते।

शराब उनके भोजन का एक अङ्ग है। पर शराब का सेवन केवल औषध के रूप में ही वे करते हैं, नशे के रूप में नहीं।

पार्सी आज भी अपने वस्त्रों से पहचान लिया जाता है। सर पर विशेष प्रकार की सफ़ेद पगडी, लम्बा कोट और चूड़ीदार पाजामा। रात के समय ढीला पाजामा पहनते हैं। धोती या तहमद कभी इस्तेमाल नहीं करते।

यद्यपि पार्सियो में वर्णभेद है पर छूत और अछूत का भेद नहीं है। कोई भी वर्ण उनके यहाँ अछूत नहीं है। यदि कोई अछूत है तो उनके घर ही में मासिक धर्म के समय उनकी स्त्रियाँ। स्त्रियो का पहनावा बहुत ही सुन्दर है। साडी और सर पर 'माथा बाना' (चोटी ढकने का सफ़ेद वस्त्र) आवश्यक है।

शिक्षा-जगत् में पार्सी संसार में सबसे आगे हैं। पुरुष और स्त्रियाँ शत प्रति शत शिक्षित हैं।

पार्सी आज संख्या में थोड़े ही हैं—कुल ढाई लाख—पर देश के हर क्षेत्र में वे अग्रणी हैं। डाक्टरी, अध्यापन-कार्य तथा वकालत जैसे उच्च पेशों में वे सबसे ऊपर हैं। बम्बई और गुजरात की देशी रियासतों की दीवानी तो उनका मौरूसी हक़-सा बन गई है। किसानी का काम करनेवाले भी हज़ारों परिवार गुजरात के गाँवों में मिलेंगे। व्यापार में तो उनकी प्रतियोगिता करनेवाला भारत में कोई दूसरा समाज नहीं है।

पार्सी यद्यपि अब भी पक्के ज़रथुस्ती हैं पर ईरानी नहीं हैं, शुद्ध भारतीय हैं। इसी लिए उन्होंने अल्प मत में होने पर भी कभी अपने संरक्षण के लिए भारत-सरकार से प्रार्थना नहीं की। वे पक्के राष्ट्रवादी हैं। किसी भी गवर्नमेंट से विशेष रक्षा के अधिकार न पाकर भी वे अपने आचार-विचार और धार्मिक संस्कारों के कारण पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं। भारत के दुःख में वे दुखी हैं और उसके सुख में उनको सुख है। वे भारत के हैं, भारत उनका है।

अशुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	२६	"मेछोमाह"	"मेद्योमाह"
१७	९	मेछोमाह	मेद्योमाह
२८	२	गुत्थियाँ	गुल्थियाँ
३०	१	अङ्गिसेमान्युष	अङ्गिरेमान्युष
,,	२	अङ्गिरसेमान्युष	,,
५४	९	यज़्दगर्द	यज़्दज़र्द
,,	२२	Yazd Zaud	Yazd Zard
६४	२४	रासना	रस्न
७९	४	मागी	माजी
,,	५	,,	,,
,,	९	रगभग	राजमाज
,,	,,	रग	रज
,,	१०	मग	माज
,,	,,	मागी	माजी
,,	१९	,,	,,
,,	२१	,,	,,
८०	१६	,,	,,
,,	१८	मागियों	माजियों
,,	२४	,,	,,
८१	१३	मागी	माजी
८२	२२	हेड	हेग
,,	,,	डैनिव	डैनिश
८३	२५	से	में
९०	१७	व्क्तव्य	वक्तव्य
,,	२०	in	is
९२	११	'चतत्त्वं	पचतत्त्वं
९३	३	(सूई)	(सुदरे)